चन्दामामा
मई १९७६
1 रु०

“आपात् स्थिति-अनुशासन पर्व”

—आचार्य विनोबा भावे

नई उपलब्धियां

राष्ट्रीय जीवन के हर क्षेत्र में उल्लेखनीय सुधार

- जरूरी चीजों की कीमतों में गिरावट।
- उत्पादन में वृद्धि। बिजली सप्लाई में बढ़ोतरी।
- औद्योगिक सम्बन्धों में सुधार।
- हड़तालें, तालाबन्दी और 'बन्द' खत्म।
- अपराध, हिंसा और दूसरी समाज-विरोधी गतिविधियों में उल्लेखनीय कमी।
- कार्यालयों में समय की पाबन्दी और कार्यकुशलता।
- लोगों में काम के लिए अधिक उत्साह।
- अप्रैल, 1974 में मुद्रा स्फीति की दर 30.1% थी, जो जुलाई, 1975 में घटकर – 2.1% हो गई।
- किसानों को खेती की उपज बढ़ाने के लिए बेहतर साधन तथा कर्ज की अधिक सुविधाएं।
- सार्वजनिक वितरण प्रणाली में सुधार
- सभी राज्यों को मिट्टी के तेल की पर्याप्त सप्लाई।
- कन्ट्रोल के कपड़े का 1974 में उत्पादन 10 करोड़ वर्ग मीटर और इस साल 16 करोड़ वर्ग मीटर।
- उपभोक्ताओं को हर साल खाना पकाने की गैस के 2 लाख 50 हजार नए कनेक्शन।
- 117 आवश्यक दवाइयों के उत्पादन में वृद्धि।
- दूर-दराज और पहाड़ी इलाकों में कम कीमत पर सीमेंट की सप्लाई।
- मध्यम आय वर्ग को टैक्स में राहत।
- जनता में अनुशासन का एक नया दौर।

श्रीमती इन्दिरा गांधी के
20 सूत्री कार्यक्रम को सफल
बनाने में सहयोग दीजिए

मेहनत से काम कीजिए, उत्पादन बढ़ाइए और अनुशासन बनाए रखिए

davp 75/316

चन्दामामा
संस्थापक : 'चक्रपाणी'
संचालक : नागिरेड्डी
इस महीने की बेताल कथा 'प्रत्यक्ष प्रमाण' में एक सुंदर नीति छिपी हुई है। जो लोग धर्म तथा नीति के समर्थक होते हैं, वे स्वार्थ से प्रेरित नहीं हो सकते! हो सकता है कि जब हम विपत्तियों में फँस जाते हैं, तब हमारी सहायता करनेवाले धर्मात्मा तथा नीतिवान न हों और वे हमारे स्वार्थ को आधार बनाकर अपने अधर्म को हमारे द्वारा सिद्ध करवाते हों! इस प्रकार अनेक लोगों का अपने स्वार्थ के वास्ते अधर्म करना हम देखा करते हैं।
वर्ष : २८ मई १९७९ अंक : ९
A CHANDAMAMA PUBLICATION
CHITRA

मित्र-संप्राप्ति

[३४]

बहेलिये के चले जाने पर चित्रग्रीव ने अपने अनुचरों से कहा–"दुष्ट बहेलिया चला गया है। अब हम निश्चित होकर महिलारूप्य नगर को चले जायेंगे। उस नगर की उत्तरी दिशा में हिरण्यक नामक मेरा एक मित्र है जो चूहा है। वह हमारे जाल को काटकर हमें मुक्त कर देगा। विपत्ति के समय मित्र ही काम आते हैं, अन्य लोग तो सहानुभूति के दो शब्द भी प्रकट नहीं करते।"

चित्रग्रीव के मार्ग दिखाने पर सभी कबूतर हिरण्यक नामक चूहे के निवासवाले सुरंग तक उड़कर चले गये। कबूतरों का राजा सुरंग के द्वार पर खड़े हो उच्च स्वर में बोला–"हे मित्र हिरण्यक! शीघ्र आ जाओ, मैं बड़ी विपत्ति में फँसा हुआ हूँ।" यह पुकार सुनकर हिरण्यक सुरंग में से ही चिल्ला उठा–"तुम कौन हो? यहाँ पर क्यों आये हो? तुम किस प्रकार की विपत्ति में फँसे हुए हो? सारी बातें मुझे सविस्तार सुना दो।"

इस पर चित्रग्रीव ने यों कहा: "मैं कबूतरों का राजा चित्रग्रीव हूँ। तुम्हारा मित्र हूँ। जल्दी आ जाओ! तुम्हारी सहायता की ज़रूरत है।"

ये शब्द सुनकर हिरण्यक अपने मित्र को देखने की खुशी में सुरंग से बाहर आया। अपने मित्र तथा उसके अनुचरों को जाल में फँसे देख दुख प्रकट करते हुए बोला–"यह सब कैसे हुआ?"

चित्रग्रीव ने कहा–"क्या तुम समझ न सके? पूर्व जन्म में मैंने जो पाप किये, उसी का यह फल है! जिह्वा के लोभ में पड़कर मैं यह विपत्ति खुद मोल चुका हूँ।

अंतिम पृष्ठ का चित्र

तुम शीघ्र हम को इन बंधनों से मुक्त कर दो।"

इस पर हिरण्यक ने कहा–"पक्षी सौ मील की दूरी पर स्थित अपने आहार को देख सकता है, मगर आँखों के सामने स्थित जाल को देख नहीं पाता। फिर भी भाग्य ज्यादा प्रबल होता है, मैं इसी निर्णय पर पहुंचा हूँ। इसका तुम क्या जवाब देते हो? अत्यंत बलवान सूर्य तथा चन्द्रमा क्या राहू के शिकार नहीं होते? मत्त हाथी, जहरीले सांप, हवा में उड़नेवाले पक्षी क्या मानव के हाथ नहीं पड़ जाते? चाहे जहाँ जिस रूप में ज़िंदगी काटते हो, मृत्यु समस्त प्राणियों का पीछा करती ही है!" यों कहकर हिरण्यक पक्षियों के जाल को काटने लगा।

इस पर चित्रग्रीव ने हिरण्यक से कहा– "दोस्त! तुम पहले मेरे बंधनों को न काटो, मेरे अनुचरों को मुक्त करके तब मेरे बंधन काट दो।"

"ये बातें बेतुकी हैं। मालिक के बाद ही अनुचरों की बारी आती है!" हिरण्यक ने कहा।

"दोस्त! ऐसा मत कहो! बेचारे ये सब मुझ पर आधारित अभागे हैं। अपने परिवार को छोड़ मेरे साथ आये हुए हैं। क्या इनके प्रति मेरी कोई जिम्मेदारी नहीं है? राजा चाहे जैसा भी गरीब क्यों न हो, अपने सेवकों के प्रति यदि दया रखता है तो वे उसका साथ नहीं छोड़ते! अलावा इसके इतने सारे बंधनों को काटते तुम्हारे दांत टूट सकते हैं, अथवा मेरे अनुचरों के मुक्त होने के पहले ही वह शिकार बहेलिया पुनः लौट सकता है! ऐसी हालत में मुझे नरक की प्राप्ति होगी! अपने अनुचरों के कठिनाइयों में रहते जो राजा सुख भोगता है, वह मरने पर नरक में चला जाता है।" चित्रग्रीव ने समझाया।

इसके उत्तर में हिरण्यक ने यों कहा:

"मित्र! मैं राजाओं के कर्तव्य जानता हूँ। तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए ही मैंने

ये शब्द कहे। तुम परीक्षा में सफल निकले! तुम और अनेक हजारों कबूतरों के राजा बनने योग्य हो! अपने अनुचरों के प्रति दया रखनेवाला राजा तीनों लोकों पर शासन कर सकता है। मैं तुम्हारे अनुचरों को इन बंधनों से मुक्त कर देता हूं।"

यों कहकर हिरण्यक ने सभी कबूतरों के बंधन काट दिये। तब चित्रग्रीव से कहा—"दोस्त! अब तुम लोग स्वेच्छा पूर्वक अपने-अपने स्थानों को लौट सकते हो। फिर कभी कोई विपदा आ गई तो मेरे पास आने में कोई संकोच मत करो।" ये शब्द कहते हिरण्यक अपने सुरंग में चला गया।

इसके बाद चित्रग्रीव अपने अनुचरों के साथ उड़कर चला गया।

इस दृश्य को स्वयं अपनी आँखों से देख लघुपतनक नामक कौआ अपने मन में यों सोचने लगा—"ओह! हिरण्यक कैसा भद्र स्वभाव का है। कैसा विवेकशील है! क्या मैं अपने प्रारब्ध पर अकेले विजय प्राप्त कर सकता हूँ? मैं भी इस चूहे के साथ मैत्री करूँगा। अपार सागर भी अपने मित्र चन्द्रमा की सहायता से ही तो ऊपर उठता है?"

यों सोचकर वह हिरण्यक के सुरंग के पास पहुंचा और चित्रग्रीव के स्वर में पुकारा—"अबे हिरण्यक! सुनो तो सही!"

यह पुकार सुनते ही हिरण्यक को संदेह हुआ कि कहीं उसने सारे बंधन काट न डाले हो, सुरंग में से ही पूछा—"कौन है?"

"मैं लघुपतनक नामक कौआ हूं।" कौए ने जवाब दिया।

ये बातें सुनते ही हिरण्यक अपने सुरंग में से और दूर चला गया और बोला—"तुम यहाँ से तुरंत चले जाओ!"

कौए ने पूछा—"मुझे क्यों दुतकारते हो? मैं एक अत्यंत जरूरी काम से तुम्हारे पास आया हूं।"

"तुम्हारे तथा मेरे बीच मैत्री हितकर नहीं है!" हिरण्यक ने जवाब दिया।

[४]

[नगर के अधिकारी के साथ जयशील, सिद्ध साधक, श्मशान के पहरेदार के पुत्र हिरण्यपुर के मंत्री के पास पहुँचे। मंत्री जब इन लोगों का समाचार राजा को देने गया, तब मंगलवर्मा ने अपूर्व शक्तियोंवाली तलवार की परीक्षा लेने की बात कही। राजा के आदेश पर वह कठघरे में पहुँचा, तभी बाघ उस पर झपट पड़े; बाद–]

सेनापति का पुत्र मंगलवर्मा खड्ग विद्या तथा धनुर्विद्या में प्रवीण जरूर है, मगर एक साथ दो बाघ मुंह बायें गरजते उसकी ओर बढ़ते देख वह डर गया। उसने दो क़दम पीछे हटाये, उछलकर चहार दीवारी पर लाँघ कर अपनी रक्षा करने के लिए कोई उपाय ढूंढने के हेतु उसने सिर उठकर देखा, तभी एक बाघ ने गरजकर उस पर झपटने को अपने आगे के पैर ऊपर उठाये। बाघ का रौद्र रूप देख सभी लोग थोड़ी देर के लिए सन्न रह गये। मंगलवर्मा डर के मारे थर-थर कांप उठा।

चहार दीवारी के ऊपर खड़े जयशील ने सोचा कि मंगलवर्मा डर गया है और इस भय की वजह से शायद वह अपनी आत्मरक्षा के लिए भी तलवार का उपयोग न कर सकेगा, इसलिए उसने चिल्ला कर

कहा—"मंगलवर्मा, डरो मत! तुम्हारे हाथ में जो तलवार है, वह अपूर्व शक्तियाँ रखती है। एक एक प्रहार से एक एक बाघ का वध कर डालो।"

यह चेतावनी पाकर मंगलवर्मा के मन में हिम्मत बंध गई। क्योंकि उसके हाथ में अपूर्व शक्तिवाली तलवार है! यह सूचना देनेवाला व्यक्ति स्वयं जयशील है! फिर भी उसके मन में यह संदेह पैदा हुआ कि अगर उस तलवार में ऐसी अपूर्व शक्तियाँ न हों तो...

मंगलवर्मा के मन में इस संदेह के पैदा होते ही उसका हाथ कांप उठा। तभी एक बाघ ने उस पर झपटकर अपने पंजे का प्रहार किया मंगलवर्मा की भुजा पर। चोट खाकर मंगलवर्मा ज़ोर से चीख उठा, वह अपनी मौत निकट आई जानकर साहसपूर्वक तलवार बाघ की छाती में घुसेड़ने को हुआ। मगर तभी देखते-देखते उसके कांपनेवाले हाथ में से तलवार फिसलकर नीचे गिर गई!

उस दृश्य को देख राजा कनकाक्ष तथा मंत्री भी भयभीत हो उठे। दोनों बाघ चार-पाँच क़दम पीछे हटकर मंगलवर्मा पर आक्रमण करने के लिए पूँछ हिलाते अपने पंजे से जमीन को खुरेदने लगे। मंगलवर्मा ने चहार दीवारी से सटकर खड़े हो अपनी आँखें बंद कर लीं।

"हे वीर युवक ,जयशील!" सिद्ध साधक चिल्ला उठा।

सिद्ध साधक की बातें पूरी न हो पाई थीं कि जयशील तालियाँ पीटते दस फुट ऊँची चहार दीवारी के ऊपर से बिजली की भाँति बाघों के सामने कूद पड़ा। हठात् अपने सामने गिरी किसी आकृति को पहचान न सकने की हालत में दोनों बाघ सहज भय के मारे दूसरी ओर दौड़ पड़े। यह मौक़ा पाकर जयशील ने नीचे गिरी तलवार को चट से अपने हाथ में ले लिया।

राजा कनकाक्ष चकित हो मंत्री की ओर देखते हुए बोला—"महामंत्री! इस

युवक की कैसी हिम्मत है! यह कोई असाधारण वीर और क्षत्रिय मालूम होता है। इसकी सहायता हमें प्राप्त हो जाय तो युवराज तथा युवरानी को हम आसानी से प्राप्त कर सकते हैं!"

"महाराज! पहले इस युवक को प्राणों के साथ बाहर आने दीजिए! तब हम और बातों पर विचार कर सकते हैं। लगता है कि अब की बार दोनों बाघ उस पर हमला करनेवाले हैं।" मंत्री धर्ममित्र ने कहा।

जयशील ने भाँप लिया कि दोनों बाघ उस पर हमला करने के प्रयत्न में हैं, वह बाघों को उत्तेजित करने के ख्याल से जमीन पर दोनों पैर टिकाकर गरज उठा। फिर चहार दीवारी की ओर भागने का अभिनय करते उसने बगल की ओर चार क़दम बढ़ाये। इस पर एक बाघ उत्तेजित हो गरजते हुए उस पर कूद पड़ा। बाघ दो फुट की दूरी पर ही था, तभी जयशील ने तलवार खींचकर उसके सिर पर बिजली की तेजी से प्रहार किया।

चोट खाकर बाघ का सिर चकरा गया, वह नीचे गिरने को हुआ, तभी संभलकर भयंकर रूप से गरज उठा और जयशील पर आक्रमण करने को अपनी पिछली टांगों पर उठ खड़ा हुआ। इस बार जयशील ने एक क़दम आगे बढ़ाकर बाघ की छाती में सारी ताक़त लगाकर तलवार घुसेड़ दी।

ओर अपनी दृष्टि दौड़ाई; तदनंतर सर उठाकर राजा से कहा-"महाराज! यह बात सच है कि इस तलवार में अपूर्व शक्तियाँ हैं; मगर दुर्भाग्य से यह तलवार मेरे हाथ से फिसलकर नीचे गिर पड़ी। इसलिए मैं उसकी शक्तियों का निर्णय नहीं कर पाया। वरना मैं अपने साहस का परिचय देता। जयशील ने यह काम किया है।"

"वाह, मंगलवर्मा! तुमने खूब कहा। तुम क़िस्मतवर हो! तुम्हारी भुजा पर शायद हल्की चोट आई है! इसलिए तुम्हें जान का कोई डर नहीं है।" मंत्री धर्ममित्र ने व्यंगपूर्ण शब्दों में कहा।

"मैंने पहले ही बताया था कि महाकाल ने जयशील को आशीर्वाद देकर वह तलवार प्रदान की है! उस तलवार के द्वारा जयशील इन खूंख्वार बाघों को ही क्या, सारी दुनिया को ही जीत सकता है!" सिद्ध साधक ने परमानंदित हो कहा।

"मगर ऐसी शक्तियाँ रखनेवाली तलवार मंगलवर्मा के हाथ में रहते एक बाघ को ही मार न सकी।" राजा ने खीझकर कहा।

इतने में मंत्री धर्ममित्र ने झुककर अपना हाथ फैलाया और जयशील से कहा-"जयशील! तुम ऊपर आ जाओ! तुमने

बाघ चिल्लाते पीछे की ओर लुढ़क पड़ा और छटपटाने लगा। यह घटना कुछ ही क्षणों में हो गई। नीचे गिरकर छटपटानेवाले अपने साथी बाघ को देखते ही दूसरा बाघ सर झुकाये एक पल्थी मारकर अपनी ओर तलवार लिए बढ़नेवाले जयशील को देख एक एक क़दम पीछे हटते हुए तीर की भाँति खुले पिंजड़े में जा घुसा।

इस पर राजा कनकाक्ष के साथ सभी लोग ऊपर से हर्ष-ध्वनि करने लगे। तब जाकर मंगलवर्मा ने अपनी आँखें खोलकर देखा। उसने मृत बाघ तथा पिंजड़े में जाकर क्रोध के मारे गुर्रानेवाले बाघ की

न केवल अपने साहस का परिचय दिया, अपितु हमारे सेनापति के पुत्र के प्राणों की भी रक्षा की। इसलिए मैं तुम्हारा अभिनंदन करता हूं। हमारे सेनापति इस वक़्त नगर में नहीं हैं। सीमा की रक्षा का पर्यवेक्षण करने गये हुए हैं। वे लौट कर यह जानते कि उनके पुत्र बाघ के मुंह में गये हैं, बड़े दुखी होते!"

ये बातें सुन राजा मंद-मंद मुस्कुराया; उन्होंने भी हाथ बढ़ाकर पूछा—"जयशील! क्या तुम हम दोनों के हाथों का सहारा ले ऊपर आ सकते हो?"

"महाराज! यह कोई कठिन कार्य नहीं है। मगर सर्व प्रथम बाघ के पिंजड़े को बंद कराना जरूरी है! मैं यदि ऊपर आ गया तो मंगलवर्मा अकेले बेहथियार रह जायेंगे। तब बाघ के द्वारा मंगलवर्मा को खतरा पैदा हो सकता है।" जयशील ने कहा।

"मंगलवर्मा के हाथ में हथियार भी रहे, तो भी वह बेहथियार के बराबर ही माना जाएगा। आखिर इंद्र के वज्रायुध भी प्राप्त हो, उसके धारण करनेवाला व्यक्ति कायर हो तो फ़ायदा क्या रहा?" सिद्ध साधक ने व्यंग्य कसा।

राजा कनकाक्ष तथा मंत्री धर्ममित्र के हाथ पकड़कर जयशील चहार दीवारी के

ऊपर आ पहुंचा। मंत्री तथा राजा ने उसका कंधा थपथपाकर उसकी वीरता की प्रशंसा की। सिद्ध साधक ने उसके साथ प्रेम से आलिंगन करके कहा—"जयशील! तुम असाधारण वीर हो! तुम मेरे लिए महाकाल को वश में लाने में ही सहायक सिद्ध न होगे, बल्कि महाराज के लिए युवराज तथा युवरानी को भी ला देने में मददगार होगे!"

"सिद्ध साधक! राजमहल में जाने पर हम ये सारी बातें सोच सकते हैं। फिलहाल तुम थोड़ा मौन रह जाओ।" इन शब्दों के साथ मंत्री धर्ममित्र ने दूर पर खड़े सेवकों को पुकारा और उन्हें आदेश

दिया कि मंगलवर्मा को ऊपर लाकर उसके घावों पर मरहम पट्टी करें।

इसके बाद राजा के साथ सभी लोग राजमहल की ओर बढ़े, मृगशाला के अधिकारी ने बाघ के पिंजड़े को बंद किया और अपमान के भार से दबे मंगलवर्मा के पास जाकर उसकी भुजा के घावों की परीक्षा करके कहा–"महाशय! ये घाव कोई खतरनाक नहीं हैं। एक सप्ताह के अन्दर भर जायेंगे! मगर दुख की बात यह है कि जयशील नामक युवक ने मृगशाला के सब से उत्तम किस्म के बाघ को मार डाला है। जंगल में जब मैं उसे पकड़ने गया था, तब वह मेरे दो सेवकों को जान से मार डालने के बाद ही मेरे अधीन में आ गया था।" मृत बाघ के पास घुटनों पर बैठकर आँखों में आँसू भरते मृगशाला के अधिकारी ने कहा।

"उस कमबख्त बाघ के मरने पर चिंता न करो, मगर यह बताओ कि क्या जयशील की उस तलवार में अपूर्व शक्तियाँ हैं? क्या तुम इस बात पर विश्वास करते हो?" मंगलवर्मा ने पूछा।

मंगलवर्मा की बातों पर मृगशाला के अधिकारी को क्रोध आया, लेकिन सेनापति के पुत्र पर क्रोध प्रकट करना उचित न मानकर संभल गया, और दाँत मींचते बोला–"महाशय, मैं तलवार की अपूर्व शक्तियों की बात तो नहीं जानता; मगर एक बात सत्य है! वह तलवार तेज धारवाली है, उसका प्रयोग करनेवाला व्यक्ति बड़ा ही साहसी है!"

"तब तो उसे आधा राज्य के साथ राजकुमारी के भी प्राप्त होने की संभावना है। अब मुझे क्या करना होगा?" मंगलवर्मा मन ही मन गुनगुनाने लगा!

मंत्री के द्वारा भेजे गये सेवकों ने आकर मंगलवर्मा को चहार दीवारी के ऊपर उठाया। बाहर आने पर मंगलवर्मा ने राजमहल की ओर एक बार चिंता पूर्ण दृष्टि डालकर पूछा–"सुनो, बाघ का वध

करनेवाले उस युवक को राजा ने कोई पुरस्कार दिया है? या युवराजा तथा युवरानी की खोज करने उसे भेज दिया है?"

"सरकार! हम ये सारी बातें नहीं जानते! सभी लोग राजमहल में जा रहे थे, पर श्मशान के पहरेदार का पुत्र बाहर ही खड़ा था, बस, हम यही जानते हैं।" एक सेवक ने उत्तर दिया।

इसी समय श्मशान के पहरेदार के पुत्र ने ऊँचे स्वर में कहा-"महाराज! मृत होकर भी जीवित मेरे पिता को मारनेवाले युवक से मुझे थोड़ा-बहुत हर्जाना दिलवा दीजिए।"

यह पुकार सुनकर मंत्री धर्ममित्र ने मुड़कर देखा, राजा से परामर्श करके श्मशान के पहरेदार के पुत्र से कहा-"अबे, तुम्हारे पिता के मरने पर चिंता न करो! महाराजा ने तुम्हें नगर के समस्त श्मशानों के पर्यवेक्षण अधिकारी के पद पर नियुक्त किया है। इस वक़्त तुम्हें जो तनख्वाह मिल रही है, उससे सौ गुणा ज्यादा मिला करेगी। अब तुम शोरगुल मत मचाओ!"

"सरकार! मैं ज़िंदगी भर आप का उपकार नहीं भूलूंगा। मेरे पिता की मौत पर एक ओर चिंता सताती है तो दूसरी ओर उनके जीवित होकर मरने की चिंता

भी सता रही है! यदि वे इस वक़्त ज़िंदा रहते तो मेरे इस ऊँचे पद को देख कितने खुश हुए होते!" श्मशान के पहरेदार के पुत्र ने कहा।

मंत्री धर्ममित्र ने मन ही मन मुस्कुराकर उसे वहाँ से चले जाने का आदेश दिया, तब राजा जयशील तथा सिद्ध साधक के साथ राजमहल के अन्दर चला गया।

राजा कनकाक्ष एक ऊँचे आसन पर बैठकर थोड़ी देर तक सोचता रहा, तब मंत्री से बोला-"महामंत्री, अब हमारा कर्तव्य क्या है? युवराज तथा युवरानी की खोज करने के प्रयत्न में हमारे सभी अनुचर असफल हो गये हैं। अब इसका दायित्व

साहसी तथा शक्तिशाली इस युवक को सौंप दिया जाय तो कैसा होगा?"

मंत्री ने जयशील की ओर मुड़कर कुछ कहना चाहा, तभी सिद्ध साधक ने आवेश में आकर कहा-"महाराज! बड़ा ही उत्तम होगा! आप के बच्चों को ढूंढ लाने के लिए केवल साहस और शक्ति ही पर्याप्त नहीं है, अपितु अलौकिक ज्ञान भी चाहिए। इसलिए जयशील के साथ जाने की मुझे भी अनुमति दीजिए!"

जयशील ने अनिच्छापूर्वक सिर हिला कर कहा-"महाराज! आप से मेरा एक निवेदन है।"

"बताओ, तुम क्या कहना चाहते हो?" राजा कनकाक्ष ने कहा।

"महाराज! मैं अपने देश को त्यागकर आजीविका के हेतु आप के यहाँ कोई नौकरी करने के ख्याल से आया हूँ। मुझे कोई नौकरी दे तो मैं सदा आप के प्रति कृतज्ञ रहूँगा।" जयशील ने निवेदन किया।

राजा कनकाक्ष ने मंत्री की ओर देखा। मंत्री ने जयशील से कहा-"महाराजा ने तुम्हें नौकरी देकर अपने कार्यकर्ताओं में से एक बना लिया है। राजा के आदेश का पालन करना एक कार्यकर्ता का कर्तव्य हो जाता है न?"

"कर्तव्य ही नहीं, उत्तरदायित्व भी होता है! आज्ञा दीजिए!" जयशील ने कहा।

मंत्री धर्ममित्र ने तृप्ति पूर्वक सिर हिलाकर कहा-"जयशील! महाराजा तुम्हें युवराज तथा युवरानी को ढूंढ़ लाने का आदेश दे-रहे हैं।"

जयशील अपना मस्तक झुकाकर जवाब देने ही जा रहा था कि तभी एक सेवक मोतियों का एक हार तथा टूटी तलवार लाकर बोला-"महाराज! ये चीजें उस पेड़ के पास एक बहेलिये को मिल गई हैं, जिस पेड़ के यहाँ से युवराजा तथा युवरानी गायब हो गई हैं। बहेलिया बेहोशी की हालत में पड़ा हुआ है।"

(और है)

प्रत्यक्ष प्रमाण

हठी विक्रमार्क पेड़ के पास लौट आया, पेड़ से शव उतारकर कंधे पर डाल सदा की भाँति चुपचाप श्मशान की ओर चलने लगा। तब शव में स्थित बेताल ने कहा–"राजन! मानव की बुद्धि अस्थिर होती है। अच्छी बुद्धि पल भर में बिगड़ सकती है; इसी प्रकार दुर्बुद्धि भी बिना कारण के अच्छी बन सकती है! इसके उदाहरण स्वरूप में तुम्हें प्रसून की कहानी सुनाता हूँ। श्रम को भुलाने के लिए सुनो!"

बेताल यों कहने लगा: कौशांबी नगर के एक धनी परिवार में प्रसून का जन्म हुआ; मगर उसकी क़िस्मत अनुकूल न थी, इसलिए उसका व्यापार ठप्प हो गया, वह निर्धन बना। आख़िर वह अपनी पत्नी और बच्चों का पालन-पोषण करने में भी असमर्थ रहा। उसी नगर के दीपक नामक एक प्रमुख व्यापारी ने प्रसून की हालत

वेताल कथाएँ

पर रहम खाकर उसे अपना प्रधान मुंशी बनाया। अब प्रसून ईमानदारी के साथ मालिक की सेवा करने लगा।

उन्हीं दिनों में दीपक के घर चोरी हो गई। दीपक ने अपने एक नौकर पर संदेह किया और उससे सच बतलाने के ख्याल से बुरी तरह से पीटा। इस पर वह नौकर वहीं पर मर गया। अपने इस अपराध को छिपाने के लिए दीपक ने अपने एक और नौकर मैनाक पर हत्या का दोषारोपण किया। इस घटना के अवसर पर प्रसून वहीं पर था।

राजभट आकर मैनाक को पकड़ ले गये। उसे कारागार में रखा गया। मैनाक ने बताया कि वह निर्दोष है और प्रसून हत्या के समय वहीं पर था; वह सच्ची बात जानता है। राजा के सामने अनेक मुक़द्दमे थे, इसलिए मैनाक की सुनवाई कुछ दिनों के लिए स्थगित कर दी गई।

दीपक ने भाँप लिया कि उसका सारा भविष्य प्रसून की गवाही पर निर्भर है। उसने प्रसून को प्रलोभन दिया कि यदि वह दीपक को निर्दोष बताकर गवाही दे तो उसे स्वतंत्र रूप से व्यापार करने के लिए आवश्यक मूल धन दिया जाएगा। इस बात को प्रसून ने भी मान लिया।

फिर भी प्रसून पर दीपक का संदेह बना रहा। उसने अपने एक विश्वास पात्र नौकर को प्रसून के घर भेजकर उसके द्वारा प्रसून की परीक्षा ली।

नौकर ने प्रसून के घर जाकर समझाया– "महाशय! क्या आप मैनाक पर झूठे अपराध का आरोप लगायेंगे? ऐसा करना क्या पाप नहीं? बेचारे मैनाक को मृत्यु दण्ड दिया जाएगा तो उसकी पत्नी और बाल-बच्चों की क्या हालत होगी?"

"पाप और पुण्य से मेरा क्या मतलब है? दीपक तो मेरे मालिक हैं! मालिक के हित की कामना करना मेरा कर्तव्य है! अलावा इसके मुझे अपने परिवार के साथ सुख

पूर्वक ज़िंदगी बितानी है तो मुझे झूठी गवाही देनी ही पड़ेगी। इसके सिवा मेरे सामने दूसरा कोई उपाय नहीं है!" प्रसून ने स्पष्ट शब्दों में कहा।

नौकर ने जाकर दीपक को प्रसून की बातें सुनाई, दीपक बड़ा प्रसन्न हुआ।

दूसरे दिन की संध्या को प्रसून को एक बार और समझाने के ख्याल से दीपक उसके घर गया। घर के भीतर मैनाक की पत्नी प्रसून से विनती कर रही थी–"बाबू साहब! मेरे पति की रक्षा आप ही को करनी है। उन्होंने तो कोई अपराध नहीं किया है। उनको अगर सज़ा मिल गई तो मैं और मेरे बच्चे अनाथ हो जायेंगे।"

प्रसून का उत्तर सुनने के ख्याल से दीपक घर के बाहर ही खड़ा रह गया।

"मुझे माफ़ कर दो, बहन! मैं दीपक का नौकर हूँ। उनके हित में ही मेरा हित है।" प्रसून ने जवाब दिया।

इस पर वह औरत प्रसून की निंदा करके अपने घर चली गई। इसके बाद दीपक ने घर के भीतर जाकर प्रसून की तारीफ़ की। प्रसून के प्रति दीपक के मन में गहरा विश्वास जम गया।

इसके दूसरे दिन ही राजा ने मैनाक की सुनवाई की। मैनाक ने राजा से निवेदन किया–"महाराज! मैं बिलकुल निर्दोष

हूँ। जिस वक़्त हत्या हुई थी, उस वक़्त प्रसून भी वहाँ पर थे। उन्होंने अपनी आँखों से इस हत्या के होते देख लिया है।"

राजा ने प्रसून को आदेश दिया कि वह वास्तविक बात सच सच बता दे।

"महाराज! दीपक ने ही हत्या की है। उस हत्या के साथ मैनाक का कोई संबंध नहीं है।" प्रसून ने कहा।

फिर क्या था, दीपक ने अपने अपराध को स्वीकार कर लिया। राजा ने दीपक को मृत्यु दण्ड सुनाकर मैनाक को मुक्त कर दिया।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर कहा– "राजन! प्रसून पहले झूठी गवाही देने

को क्यों तैयार हो गया? क्या अपने मालिक के प्रति स्वामिभक्ति के कारण से, या दीपक द्वारा प्राप्त होनेवाले धन के लोभ के कारण? फिर ऐसा व्यक्ति राजा के सामने बिना कारण के अपने विचार को बदलकर सच क्यों बोला? उसके मुँह से सत्य के निकलते ही दीपक ने अपने अपराध को क्यों स्वीकार कर लिया? इन संदेहों का समाधान जानते हुए भी न दोगे तो तुम्हारा सिर टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा!"

इस पर विक्रमार्क ने कहा–"प्रसून ने अपना विचार नहीं बदला! यह बात स्पष्ट है कि वह स्वभाव से ही सत्यवादी है। लेकिन दीपक ने उसकी जाँच करने के लिए अपने नौकर को भेजा, एक बार और उसे स्पष्ट करने के लिए वह स्वयं उसके घर गया। अब प्रसून के द्वारा सच बताने की बात को छिपाने के कई कारण हैं। यदि उसके द्वारा सच बताने की बात प्रकट हो जाएगी तो दीपक अपने अपराध से बचने के अनेक प्रयत्न कर सकता है। इसलिए दीपक का उस पर विश्वास पैदा करना अत्यंत आवश्यक है। अलावा इसके उसके मन में यह लोभ भी नहीं है कि वह ईमानदार और सत्यवती है, इस बात को सारा समाज जान ले। वह मैनाक की पत्नी की किसी भी प्रकार से सहायता करने जा रहा है, ऐसी हालत में इस बात को पहले ही प्रकट करने से उसका कोई विशेष उपकार भी होनेवाला नहीं है। अब दीपक के द्वारा अपराध को स्वीकार करने का कारण यह है कि सच्चाई को जाननेवाले अनेक नौकर भी हैं। जब प्रसून पर उसका पूर्ण विश्वास था कि वह ज़रूर उसके अनुकूल गवाही देगा, उसीने उसके विरुद्ध गवाही दी तो उसका यह विश्वास हिल गया कि क्षुद्र नौकर उसे बचा नहीं सकते। इस कारण से उसने सच्चाई को स्वीकार कर लिया।"

राजा के इस प्रकार मौन भंग होते ही बेताल शव के साथ गायब हो पेड़ पर जा बैठा। (कल्पित)

कवि की चातुरी

शीतलपुर का ज़मीन्दार नगेन्द्र कलाप्रिय थे। वे चित्रकार, संगीतकार, नर्तक तथा कवियों का सम्मान किया करते थे। उनकी मृत्यु के बाद उनका पुत्र वीरेन्द्र ज़मीन्दार बना। वह कला-प्रिय था, परंतु मल्लविद्या में निपुण व्यक्तियों का वह आदर-सम्मान किया करता था।

नगेन्द्र के ज़माने में जो कलाकार शीतलपुर में आये थे, उनका अब सम्मान तो नहीं हुआ, बल्कि उन्हें साधारण तौर पर जो भेंट व पुरस्कार मिलते थे, वे भी बंद कर दिये गये। साथ ही दरबारी कवि कुशारी से वीरेन्द्र द्वेष भाव रखता था। कुशारी सहज प्रतिभा के धनी थे। इसलिए नगेन्द्र ने उन्हें बुलवाकर जागीरी ही न दी, बल्कि वार्षिक शुल्क भी देकर उनको अपने दरबारी कवि नियुक्त किया। इस पर कुशारी ने नगेन्द्र चरित तथा उसके पूर्वजों का इतहास भी पाँच भागों में रचा। ये पाँचों भाग राजमहल के ग्रंथालय में सुरक्षित रखे गये थे। दशहरा के बाद दो महीनों तक उन भागों का पारायण होता था। ज़मीन्दार के इलाके के सभी युवक आकर उनका श्रवण करते थे।

वीरेन्द्र जब ज़मीन्दार बना, तब कुशारी को दरबार में बुलवाकर कहा—"कवि महोदय, आप को अपने दरबारी कवि का ओहदा बचाये रखने के लिए एक मौक़ा दे रहा हूँ। वैसे मैं कविता करनेवालों को दान देना नहीं चाहता, फिर भी मेरे पिता ने आप की कविता की प्रतिभा पर प्रसन्न हो आप को दरबारी कवि नियुक्त किया है, इसलिए मैं आप के प्रति अन्याय करना नहीं चाहता। यदि आप मेरे संबंध में एक और जिल्द न रचेंगे तो आप को अपने इस पद से हटाना पड़ेगा।"

ये बातें कवि कुशारी को अत्यंत अपमानजनक प्रतीत हुई, परंतु वह कुछ बोल नहीं पाया। उसने छठी जिल्द की रचना करने को मान लिया और कहा– "हुजूर! मैं पाँचवाँ भाग अपने घर ले जाऊँगा, उसे पुनः पढ़कर उसी शैली में छठे भाग की रचना करूँगा।"

वीरेन्द्र ने कुशारी को अनुमति दी। कुशारी पाँचवाँ भाग अपने घर ले गया और लेखन का काम शुरू किया। एक महीने के भीतर आधा भाग तैयार हो गया। वीरेन्द्र ने दरबार में अपने प्रशंसकों के बीच छठे भाग का आधा अंश पाठ कराया। सब ने कुशारी की कविता की तारीफ़ की। वह प्रसन्न हो घर लौट आया। दिन-रात बैठकर छठे भाग की पूर्ति की।

मगर दुर्भाग्य कुशारी का पीछा कर रहा था। उस रात को उसके घर आग लग गई और उसके छठे भाग के साथ पाँचवाँ भाग भी जलकर राख हो गया। कुशारी ने भाँप लिया कि अब वीरेन्द्र उसे क्षमा नहीं करेगा।

उसके विचार के अनुसार वीरेन्द्र के सेवक आकर कुशारी को दरबार में बुला ले गये।

"पाँचवाँ भाग अब कैसे प्राप्त होगा?" वीरेन्द्र ने कुशारी से गरजकर पूछा।

"उसकी रचना तो मैंने ही की है। मैं पुनः उसे लिखूंगा, पहले की अपेक्षा और अच्छा लिखूंगा।" कुशारी ने जवाब दिया।

"यह तो असंभव है। वह पहले जैसा कभी रचा नहीं जा सकता। पाँचवाँ भाग उसी रूप में फिर से लिखा नहीं जा सकता। घर के जलने में आप की असावधानी है। इसके लिए आप को दण्ड भोगना पड़ेगा। यह दण्ड क्या हो, इसका निर्णय मैं तीन दिन के अन्दर कर लूंगा। अब आप जा सकते हैं।" वीरेन्द्र ने कड़क कर कहा।

कुशारी निराश हो घर लौट आया। देखता क्या है, जादूगर शंकर उसके इंतज़ार में बैठा हुआ है। शंकर अनेक दिनों से भ्रमण पर था और वह उसी दिन लौट आया था।

"दोस्त! दुखी क्यों हो? क्या हुआ?" शंकर ने कुशारी से पूछा।

कुशारी ने सारा वृत्तांत कह सुनाया। "ओह, ऐसी बात है! में कोई उपाय करूंगा। सावधानी से सुन लो और मेरे कहे मुताबिक़ करो। तुम्हें कोई विपत्ति न होगी।" शंकर ने समझाया।

कुशारी ने शंकर की बातें सावधानी से सुन लीं, तदुपरांत दरबार में जाकर वीरेन्द्र से कहा–"महानुभाव! कागज जब जलता है, तब वह राख हो जाता है, मगर उस पर का लेखन नष्ट नहीं होता! यदि हम अपनी बुद्धि को सही ढंग से केन्द्रित कर दे तो रचना को पढ़ सकते हैं। मैं ऐसी शक्ति रखता हूं। इसके आधार पर मैं पाँचवें तथा छठे भाग की पुनः रचना कर सकता हूँ। मैं उन भागों की राख को सुरक्षित रख चुका हूँ।"

"इसका सबूत ही क्या है?" वीरेन्द्र ने पूछा।

"आप चाहें तो इसी वक़्त मेरी शक्ति की परीक्षा ले सकते हैं।" कुशारी ने जवाब दिया।

"अच्छी बात है, कवि महोदय! यदि आप अपनी इस शक्ति को साबित कर
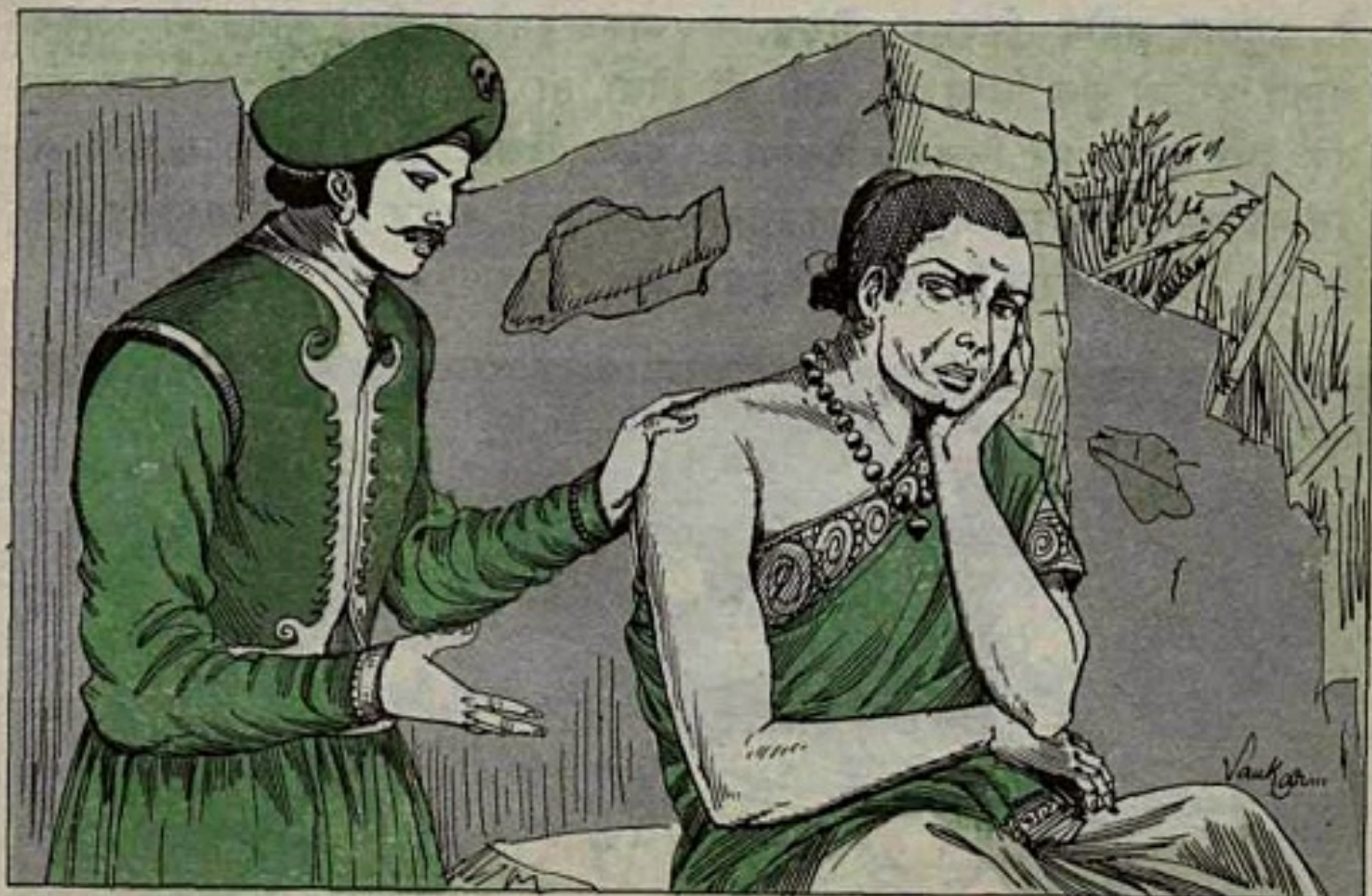
दिखावे तो आप को दण्ड न दूंगा। साथ ही मैं आप को अन्य सुविधाएँ देकर भविष्य में दूसरी कलाओं का भी पोषण करूंगा।" वीरेन्द्र ने वचन दिया।

"अच्छी बात है। आप इन कागज़ों का पुलिंदा देखिए। ऊपरी कागज़ पर आप अपनी इच्छा से कुछ लिख दीजिए। उसे मुझे तथा अन्य किसी को दिखाये बिना उस कागज को निकालकर फाड़ दीजिए, उसे जलाकर राख करके मल दीजिए और तब मेरे हाथ दीजिए। मैं उस राख को ले जाकर एक कमरे में जाऊँगा और आप को बताऊँगा कि आपने उस कागज पर क्या लिखा है?" कुशारी ने समझाया।

इसके बाद कुशारी ने शंकर की सलाह के अनुसार प्रयोग किया। वीरेन्द्र ने कागज पर जो कुछ लिखा था, उसी को एक दूसरे कागज पर लिखकर दिखाया। इस पर सभी दरबारियों ने यह मान लिया कि जब यह बात संभव है, तब पाँचवें तथा छठे भाग को उसी रूप में लिखना भी संभव है। फिर क्या था, कुशारी ने तीन महीनों के अन्दर पांचवें तथा छठे भागों को पुनः लिख दिया। शंकर की कृपा से शीतलपुर में फिर से ललित कलाओं को आश्रय प्राप्त हुआ।

जानते हैं कि वह इंद्रजाल क्या था? शंकर ने कुशारी को एक विशिष्ट प्रकार के कागज़ों का बण्डल दिया था। वे कागज दो तरफ़ चिपके हुए थे। उनमें तीन व चौथे कागज़ों के बीच एक सफ़ेद कागज़ की आकृति से भी छोटा कार्बन कागज रखा गया था। वीरेन्द्र ने पेन्सिल से ऊपरी कागज़ पर ज़ोर देकर जब लिखा, तब चौथे पृष्ट पर स्पष्ट रूप से उसकी प्रति अंकित हुई। कुशारी ने दूसरे कमरे में जाकर दूसरे व तीसरे कागज़ को उठाकर देखा तो उसे वीरेन्द्र की लिखावट की नकल दिखाई दी। कुशारी ने उसी को एक दूसरे कागज़ पर लिखकर सबको दिखाया।

बख्शीश की कहानी

लोग कहा करते थे कि न्यायपुर देश के महीपाल के शासन में धर्म और न्याय का बोलबाला है। महीपाल ने धर्म की हानि होने से बचाने के लिए अनेक क़ानून बनाये और कड़ाई से उन्हें अमल भी किया। अलावा इसके न्याय के निर्णय में वह किसी भी प्रकार का पक्षपात नहीं दिखाता था।

ऐसे ही देश में एक बार एक विचित्र घटना हुई। चन्द्रमुख नामक एक न्यायाधिकारी ने लंपट नामक एक व्यक्ति से अधिक धन लेकर उसके अनुकूल फ़ैसला सुनाया। इस पर रमण नामक एक व्यक्ति ने राजा से फ़रियाद की।

इस फ़रियाद को सुन राजा को अपार आश्चर्य हुआ। चोरियाँ, हत्याएँ तथा व्यापार में धोखा देना, ऐसे अपराध तो उस देश में अनेक हुए थे, मगर आज तक धन लेकर न्याय का गला घोंटा नहीं गया था। एक प्रकार से यह उसके न्याय की चुनौती थी।

वास्तव में बात यों थी—लंपट नामक एक बड़े व्यापारी ने अपने गोदाम बनवाने के लिए न्यायपुर में एक विशाल प्रदेश को खरीदा और वहाँ पर भवनों का निर्माण भी प्रारंभ किया। मगर उस प्रदेश के मध्य भाग में रमण नामक एक व्यक्ति की थोड़ी सी ज़मीन थी। रमण गरीब था, फिर भी उसने अपनी जगह बेचने से इनकार किया। वह रमण के पूर्वजों की ज़मीन थी। उसका यह अंध विश्वास था कि उसके वंश के पितृ देवता सब उसी जगह रहते हैं।

रमण जब अपने परिवार के साथ तीर्थाटन पर गया हुआ था, तब लंपट ने उसकी ज़मीन पर क़ब्ज़ा करके गोदाम

बनाना शुरू किया। रमण ने लौटकर शिकायत की, इस पर लंपट ने उसे मुँह माँगा धन देने का प्रलोभन दिया।

"भाई साहब, क्या मैं तुम्हारे धन के लोभ में पड़कर अपने पितृ देवताओं को निराश्रय बना सकूँगा?" रमण ने धमकी दी।

"यदि तुम धन नहीं चाहते हो, तो यह तुम्हारा दुर्भाग्य ही कहा जाएगा। मैं गोदाम बनाने से मुँह नहीं मोड़ूँगा। तुम जो भी करना चाहो, कर लो!" लंपट ने भी उसी स्वर में धमकी दी।

रमण ने न्यायाधिकारी के पास जाकर शिकायत की। न्यायाधिकारी ने आश्वासन दिया कि वह इसकी सुनवाई करेगा, साथ ही लंपट को आदेश दिया कि वह अपने गोदाम बनाने के कार्य को तत्काल ही स्थगित कर दे।

इस पर लंपट का कलेजा काँप उठा। उसने कभी कल्पना तक न की थी कि एक गरीब व्यक्ति इस प्रकार एक राहू की भाँति उसे ग्रस लेगा और उसके कार्य में बाधा डालेगा। यदि न्यायालय में फ़ैसला उसके विरुद्ध हुआ तो उसका भारी नुक़सान होगा। इसलिए उसने न्यायाधिकारी चन्द्रमुख से एकांत में मिलकर अपनी हालत बताई।

न्यायाधिकारी ने लंपट को बताया–"रमण के काग़ज़-पत्र न्यायपूर्ण हैं। वह अपनी ज़मीन बेचना नहीं चाहता। ऐसी हालत में मैं कुछ नहीं कर सकता। मैं न्याय का गला घोंटना नहीं चाहता।"

इसके बाद क्या हुआ, कोई नहीं जानता; लेकिन जब सुनवाई हुई, उस वक़्त सबने देखा कि रमण के काग़ज़-पत्रों में यों लिखा हुआ था–'रमण के पूर्वजों ने लंपट के पूर्वजों से वह जमीन बिना मूल्य चुकाये ले ली है और लंपट के वंशज किसी भी स्थिति में उस भूमि को उचित मूल्य देकर पुनः अपने अधीन कर सकते हैं।' रमण उन पत्रों को देख आश्चर्य में आ गया। उसने दूसरों

से पढ़वाया तो पाया कि जो कुछ उन कागज़ों में लिखा गया है, वह सत्य है!

इस पर रमण ने लंपट से कहा–"अगर वह ज़मीन आप की है, तो मेरे पितृ देवता वहाँ पर रहेंगे ही क्यों?" यों बताकर लंपट ने जो मूल्य दिया, उसे ले लिया और संतोष के साथ अपने घर लौट आया।

मगर दूसरे ही दिन रमण को मालूम हुआ कि उसके प्रति अन्याय हो गया है। न्यायाधिकारी के यहाँ रहनेवाले एक नौकर ने लंपट से न्यायाधिकारी के द्वारा बड़ी रक़म लेते हुए अपनी आँखों से देखा और उसने यह बात रमण को बताई। रमण ने सोचा कि उसके पितृ देवताओं के साथ अन्याय हुआ है, इसलिए उसने सीधे राजा के पास जाकर शिकायत की।

राजा ने गुप्त रूप से दरियाफ़्त कराकर यह जान लिया कि न्यायाधिकारी के घर दस हज़ार रुपये हैं। राजा ने न्यायाधिकारी को बुलाकर डांटा। इस पर उसने स्वीकार किया कि उसने लंपट से धन लेकर अन्याय पूर्वक फ़ैसला सुनाया है।

राजा महीपाल ने क्रोध में आकर न्यायाधिकारी चन्द्रमुख से क़ैफियत तलब की। चन्द्रमुख ने यों बताया–"महाराज! मेरी कन्या के विवाह के लिए बढ़िया रिश्ता आया। परंतु मुझे दहेज़ के रूप में

दस हज़ार रुपये देना था। मैं अपनी आमदनी में से ज़िंदगी-भर बचाकर भी इतनी भारी रक़म संग्रह न कर सकूँगा। मैं इस ख्याल से दुखी था कि देखते देखते ऐसा बढ़िया रिश्ता हाथ से कैसे निकल जाने दूँ? तभी लंपट का मुक़द्दमा पेश हुआ। उसने प्रलोभन दिया कि यदि फ़ैसला उसके अनुकूल होगा तो वह दस हज़ार रुमये मुझे देगा। रमण तो हठी था। इसलिए मैंने ऐसा फ़ैसला सुनाया जिससे दोनों का लाभ हो! इससे न केवल रमण को धन प्राप्त हुआ, बल्कि मेरी कन्या का विवाह तथा लंपट के व्यापार की समस्या भी हल हो गई।

इसके बाद महीपाल ने लंपट को बुलवाकर पूछा–"सुनो! यह बात सही है कि प्रत्येक मनुष्य में थोड़ी-बहुत दुर्बलताएँ होती हैं। चन्द्रमुख वैसे स्वभाव से अच्छा आदमी है। तुमने ऐसे व्यक्ति की कमज़ोरी को उकसाकर उसके द्वारा अन्यायपूर्ण कार्य कराया है। इसका तुम क्या जवाब देते हो?"

"महाराज! मैंने किसी की भी दुर्बलता को उकसाया नहीं। चन्द्रमुख ने मुझ से धन माँगा और बताया कि धन देने पर मेरी समस्या हल हो जाएगी। यदि मैं न दूं तो मेरी बड़ी भारी हानि होगी। इसलिए मैंने धन देना स्वीकार किया।" लंपट ने उत्तर दिया।

महीपाल की समझ में कुछ न आया। एक नये प्रकार का अपराध अपने देश में हुआ है। इसके लिए दण्ड देने के पूर्व इस अपराध के कारक का निर्णय करना उसके लिए आवश्यक प्रतीत हुआ।

मगर यह समस्या सरलता पूर्वक हल होनेवाली न थी। यह समस्या तो ऐसी थी जैसे कि यह कहना कठिन है कि पेड़ पहले पैदा हुआ या बीज? कुछ होशियार लोगों ने प्रथम अपराध के कारक का पता जानकर भी चन्द्रमुख तथा लंपट के यहाँ से भी धन लेकर मौन रह गये हैं। इसीलिए राजा भी चन्द्रमुख के अपराध की सुनवाई नहीं कर पया।

उस दिन से ऐसे अपराधों की संख्या बढ़ती गई। इसका नामकरण 'बख्शीश' पड़ गया। इस अपराध में पहली भूल बख्शीश देनेवाले की है या लेनेवाले की है? इसका सही जवाब कोई नहीं दे सका। क्योंकि परिस्थितियों के अनुरूप समाधान भी बदलते रहते हैं, मगर उन अपराधों के लिए कोई दण्ड नहीं रह जाता है। इसका कारण यह है कि अन्य अपराधों में जो शक्ति नहीं है, वह इसमें पाई जाती है, वही न्याय को बदलने की शक्ति है!

१७२. नया अग्नि पर्वत

हमारी आँखों के ही सामने नये अग्नि पर्वतों का जन्म लेना अत्यंत कम ही देखा गया है। इस शताब्दी में ऐसा अग्नि पर्वत १९४४ में मेक्सिको में पैदा हुआ। (१९७५ के मार्च का अंक देखें।) गत वर्ष रूस के काम्चात्का के प्रायद्वीप में अनेक अग्नि पर्वत एक साथ पैदा हुए। इस बार की विशेषता यह है कि वैज्ञानीक पहले ही यह जानकर कि ऐसे अग्नि पर्वत कब और कहाँ पैदा होते हैं, उनके उद्भव का परिशीलन करने के लिए कैमरों के साथ तैयार हैं। यह अत्यंत अद्भुत बात ही मानी जाएगी।

जीने का रास्ता

जगपति एक तरह से आवारा था। वह अपनी पत्नी और बच्चों की जिम्मेदारी का बिलकुल ख्याल नहीं रखता था। उसके पूर्वज एक जमाने में संपन्न थे। इसलिए उस संपन्नता का अभिमान उसके दिमाग पर हर वक़्त छाया रहता था। जान-पहचान के लोगों से उधार लेकर वह थोड़े दिन तक अपनी गृहस्थी की गाड़ी को ठेलता रहा। मगर उधार के बढ़ने के साथ उनके चुकने का कोई रास्ता न पाकर वह हताश हो गया। ऋणदाताओं की आँखों से बचने के लिए जगपति मुँह अंधेरे ही घर छोड़ देता और रात गये घर लौट आता।

इस बीच ऋणदाता घर आ धमकते और जगपति की बीबी की निंदा करके चल देते। आखिर वह भी खीझ उठी। उसने एक दिन जगपति को ताना देते हुए कह दिया–"तुम तो आखिर मर्द ठहरे! दिन भर कहीं चक्कर लगाकर आधी रात को घर लौट आते हो। मैं ऋणदाताओं को जवाब देते थक गई हूँ। सभी लोग कल सुबह ही आ जायेंगे, तुम घर पर ही रह जाओ, सबको समझा दो।"

पत्नी के मुँह से ये शब्द सुनने पर जगपति को उस रात नींद न आई। सब लोग यदि उसे पीट दे तो उसकी इज्जत कहाँ रह जायगी! उसे अपनी ज़िंदगी पर घृणा पैदा हो गई। ये बातें सोचकर वह बड़े तड़के उठा, गाँव के बाहर के बरगद के पास पहुँचा जहाँ पर एक पुराना व गहरा उजड़ा कुआँ था। कुएँ में कूदकर उसने आत्म हत्या करने का निश्चय कर लिया।

जगपति कुएँ में कूदने ही जा रहा था, तभी कुएँ में से एक पिशाच बाहर आया, उसकी ओर आपाद-मस्तक निहारकर बोला–"तुम पागल तो नहीं हुए हो?

जगदीश मेहरा

जिस वक़्त भूत और प्रेत विचरण किया करते हैं, ऐसे वक़्त तुम यहाँ पर क्यों आये?"

जगपति ने पिशाच को अपना सारा वृत्तांत कह सुनाया–"अब मेरा जीवित रहना किसी भी हालत में संभव नहीं है, इसलिए मैं मरने आया हूँ, तुम हट जाओ।"

पिशाच घबरा उठा और उसको रोककर बोला–"ऐसा दुस्साहस मत करो। मैं भी तुम्हारे जैसे जोश में आकर इस कुएँ में कूद पड़ा और इस रूप में बदल गया हूँ। इसके बाद मेरी बीबी व बच्चों की जो हालत हुई, बयान नहीं कर सकता। मेरी बात सुनकर लौट जाओ।"

"अगर मैं इस वक़्त न भी मरूँ, सवेरा हो जाने पर मेरे कर्जदार मुझे जान से जरूर मार डालेंगे।" जगपति ने कहा।

ये शब्द सुनने की देरी थी कि पिशाच झट से कुएँ में कूद पड़ा और सोने का एक बड़ा सिक्का लेकर लौट आया, तब बोला–"इसे ले जाकर तुम अपना कर्ज चुका लो। फिर कभी भूल से ही सही, इस ओर न पटकना, समझें, जाओ!"

जगपति सोने का सिक्का लेकर खुशी-खुशी घर लौट गया और सारी बातें अपनी पत्नी को सुनाईं। पत्नी ने सारी बातें सुनकर खुश होने के बजाय उसे झिड़की दी–"तुम्हारी अक़्ल क्या चरने गई थी? एक ही सिक्का लेकर लौट आये? थोड़े और सिक्के माँगकर ले आते?"
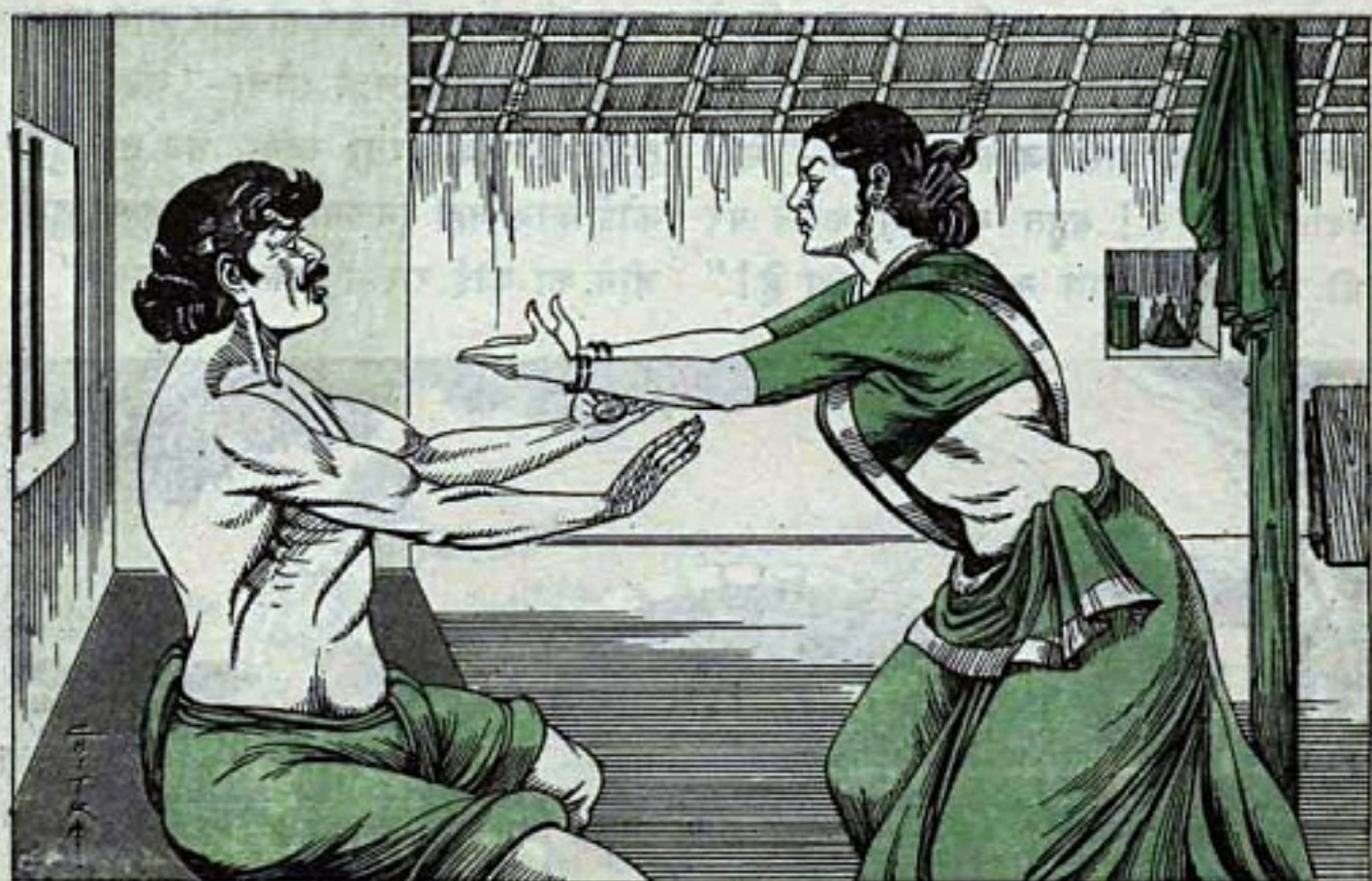
"हाँ, हाँ, तुम्हारा कहना सही है।" जगपति ने जवाब दिया। उस सिक्के को बेचकर जगपति ने अपने सारे कर्ज चुकाये, साथ ही घर भर के लोगों को भर पेट तीन दिन तक का खाना भी मिल गया।

चौथे दिन जगपति की पत्नी ने समझाया–"आज रात को तुम फिर से आत्महत्या करने के लिए कुएं के पास चले जाओ।"

जगपति कुएँ के पास पहुँचा और उसमें गिरने का अभिनय करने लगा। पिशाच ने चौंककर पूछा–"फिर तुम्हें क्या हो गया?"

"मैं क्या करूँ? कर्ज तो सारे चुक गये। लेकिन जीने का मुझे कोई रास्ता दिखाई नहीं देता।" जगपति ने जवाब दिया।

पिशाच ने तत्काल एक और सिक्का लाकर जगपति के हाथ दिया। जगपति ने घर लौटकर दस दिन मजे से बिताये, ग्यारहवें दिन कुएँ के पास जाकर बोला–"मेरी बदक़िस्मती है! बहुत कोशिश करने पर भी मुझे कोई काम नहीं मिल रहा है!"

पिशाच ने रहम खाकर एक और सिक्का जगपति को ला दिया।

इस बार जगपति की पत्नी ने सिक्के को गलवाकर चूड़ियां बनवा लीं।

इसके दूसरे दिन ही जगपति फिर से कुएँ के पास पहुँचा। पिशाच ने पूछा–"सुनो, फिर तुम्हें क्या हुआ?"

"मैं इस ज़िंदगी से ऊब गया हूँ! काम तो करना चाहता हूँ, लेकिन कोई काम ही नहीं मिलता।" जगपति ने कहा।

"मैं भी तुम से ऊब गया हूँ। तुम इन दुष्टों के बीच जी नहीं सकते! कुएँ में कूद जाओ। मजे से हम दोनों बातचीत करते अपने दिन काट लेंगे।" पिशाच ने कहा।

जगपति घबराकर बोला–"एक बार और कोशिश करता हूँ, शायद कोई काम मिल जाय।" यों कहते घर की ओर भाग गया।

इस पर पिशाच ने सोचा–"जब तक मैं तुम्हारी मदद करता रहूँगा, तब तक तुम्हें कोई काम नहीं मिलेगा। अब जरूर तुम्हें जीने का कोई रास्ता निकल आएगा।"

समर्थ नारी

गंगापुर में गोविंदगुप्त नामक एक सच्चा व्यापारी था। उसका पुत्र श्रीमंतगुप्त एकदम नालायक़ था। वह विवाह के योग्य तो हो चुका था, लेकिन उसके अनुरूप उसकी बुद्धि का विकास न हुआ। कुछ मित्रों ने गोविंदगुप्त को सलाह दी कि श्रीमंत की शादी करने पर वह सुधर सकता है। गोविंदगुप्त धनी था, इसलिए उसने बड़ी आसानी से ही एक सुयोग्य कन्या ढूँढ़ ली और उसके साथ श्रीमंतगुप्त की शादी कर दी।

श्रीमंत की पत्नी लक्ष्मी न केवल सुंदर थी, बल्कि बुद्धिमती भी थी। श्रीमंतगुप्त विवाह के समय भी लज्जित हो अपनी पत्नी की ओर देख न पाया। उसके भोलेपन को देख कन्या पक्ष के सभी लोग यह सोचकर चिंतित हुए कि वर एकदम बावरा है। लेकिन लक्ष्मी ने उन्हें समझाया कि उसका पति स्वभाव से भोला है, लेकिन कोशिश करने पर उसे सुधारा जा सकता है।

श्रीमंत कुएँ के मेंढक की भाँति अपने घर की हालत से बढ़कर कुछ जानता-वानता न था। वह दुनियादारी की बातें तो बिलकुल जानता न था। गोविंदगुप्त ने इस विचार से अपनी बहू और पुत्र को काफी धन देकर तीर्थाटन पर भेज दिया कि इस प्रकार की यात्रा के द्वारा शायद उसमें थोड़ा-बहुत परिवर्तन हो जाय। उसने भाँप लिया कि उसकी बहू बड़ी बुद्धिमती तथा समर्थ नारी है, इसलिए उनके साथ और किसी को मदद के लिए न भेजा।

अपनी पत्नी के साथ चलने में भी श्रीमंत इस तरह सहम गया, मानों वह किसी अपरिचित व्यक्ति के साथ जा रहा

हो! मगर घर से निकलने के बाद नये-नये प्रदेश व नये दृश्य देखने में उसे मजा आया, खर्च करने के लिए काफी धन साथ में था ही, इसलिए यात्रा आराम से कटी। मगर इस नये प्रदेश में श्रीमंत के लिए लक्ष्मी ही एक मात्र सहारा बनी, वह उसके पीछे एक बालक की भाँति घूमता रहा। उसे इस बात का सदा डर बना हुआ था कि यदि वह अपनी पत्नी की छाया से भी हटकर दूर हो जाय तो छूट सकता है।

एक शहर में एक दूकान पर उसे बढ़िया अंगूर और केले दिखाई दिये। उन्हें देखते ही श्रीमंत को अपनी दादी की याद आ गई। बूढ़ी को अंगूर और केले बहुत ही पसंद थे। उसने अपनी पत्नी लक्ष्मी से कहा–"ये फल मेरी दादी को बहुत पसंद हैं। ऐसे अच्छे फल उसने कभी खाये न थे। सुना है कि मेरे दादा ने दादी के वास्ते पाँच कोस जाकर अंगूर ला दिया था।"

"लौटती यात्रा में खरीदकर घर ले जायेंगे।" लक्ष्मी ने कहा।

"तब तक रुके ही क्यों? मेरे गाँव का कोई दिखाई दे तो उसके हाथ अभी भेज सकते हैं न?" श्रीमंत ने कहा।

लक्ष्मी अन्यमनस्क थी। उसने 'हाँ' कह दिया। श्रीमंत ने तीर्थ की जनता में अपने गाँववालों को ढूढ़ना शुरू किया। थोड़ी देर बाद उसे एक जगह बिठाकर लक्ष्मी तालाब में नहाने चली गई।

श्रीमंत ने रास्ता चलनेवाले दो व्यक्तियों को बुलाकर पूछा–"तुम लोग रंगपुर के निवासी हो न?"

दोनों ने परस्पर एक दूसरे का चेहरा देख लिया। उनमें से एक ने कहा–"हाँ, हाँ, बताओ, क्या चाहते हो? हम तो रंगपुर के ही निवासी हैं।"

"मैं गोविंदगुप्त का पुत्र हूँ। मैं अपनी दादी को थोड़े फल भेजना चाहता हूँ। तुम लोग बुरा न मानोगे तो तुम्हारे हाथ

भेजना चाहता हूं। क्या तुम लोग दे दोगे?" श्रीमंत ने पूछा।

"यह कौन बड़ी बात है? जल्दी फल लेते आओ, हमें जाना है।" दोनों ने एक स्वर में कहा।

श्रीमंत बड़ा खुश हुआ। एक बड़ी दूकान से पच्चीस रुपये देकर एक बड़ी टोकरी भर फल खरीद लाया। उनके हाथ देकर बोला—"मैं तुम लोगों का यह उपकार कभी भूल नहीं सकता।"

वे लोग फल लेकर चले गये। तब श्रीमंत ने लक्ष्मी के पास लौटकर सारी बातें सुनाईं। लक्ष्मी ने समझाया—"आइंदा कभी ऐसे अपरिचितों पर विश्वास न करो, याद रखो।"

इसके बाद उन दोनों व्यक्तियों का लोभ और बढ़ गया। वे श्रीमंत को खूब लूटना चाहते थे। श्रीमंत तथा लक्ष्मी जब दूसरे तीर्थ में गये, तब वे भी उनके पीछे वहाँ पर पहुँचे। उस तीर्थ की एक सराय में कमरा लेकर लक्ष्मी और श्रीमंत उसमें ठहर गये। श्रीमंत जब कमरे से अकेला बाहर निकल आया, तब उन दोनों ने उससे मिलकर प्रसन्नता पूर्वक कुशल प्रश्न पूछे।

उन्हें देख श्रीमंत बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने पूछा—"तुम दोनों रंगपुर से कब लौट आये? मेरी दादी क्या कुशल है? मेरे घर के सभी लोग आराम से हैं न?"

"तुमने जो फल भेजे, उन्हें पाकर तुम्हारी दादी बड़ी खुश हुई। तुम्हारी
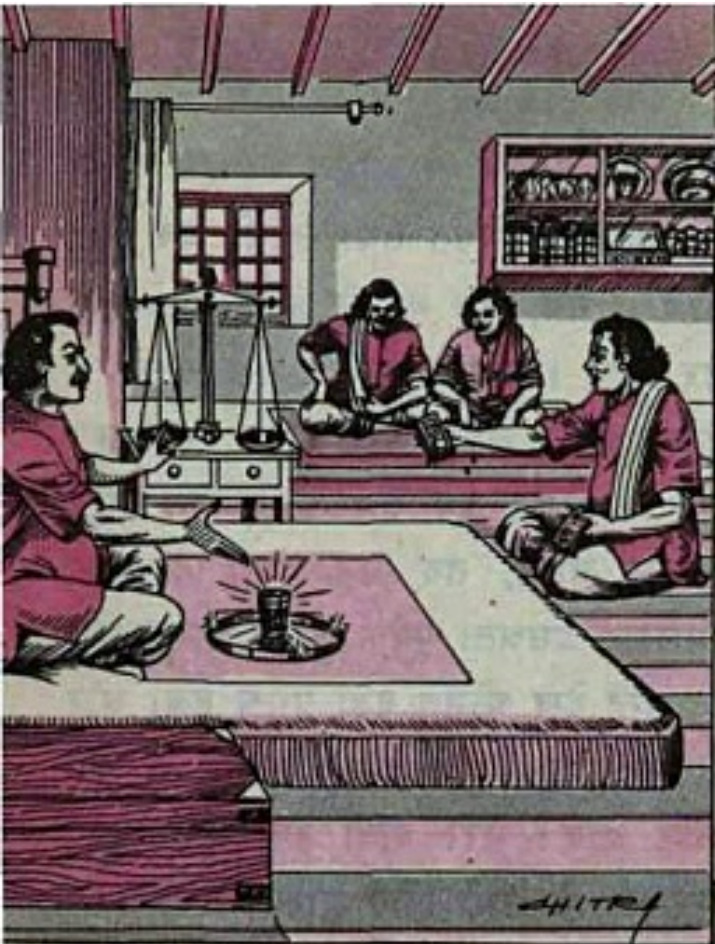
अक़्लमंदी पर तुम्हारे पिता बहुत खुश हुए। लेकिन तुम्हारी दादी ने तुम से एक और बात कहने का अनुरोध किया है। वह एक चाँदी की थाली और सोने का एक लोटा भी चाहती है, जल्दी भिजवाने को कहा है, किसी के हाथ जरूर भेज दो। अच्छा, अब हम लोग चलते हैं।"

"ठहर जाओ भाई! यह बताओ कि तुम लोग रंगपुर कब जा रहे हो?" श्रीमंत ने पूछा।

"हम तो अभी जा रहे हैं। किसी दूसरे के हाथ क्यों नहीं भेज देते?" दोनों ने कहा।

"ऐसी बात नहीं, यहाँ से ले जानेवाला मेरे है ही कौन?" श्रीमंत ने अपनी शंका प्रकट की। "तब तो शीघ्र चांदी की थाली और सोने का लोटा खरीदकर दे दो।" दोनों ने जल्दी मचाई।

श्रीमंत एक ही छलांग में सराय के भीतर चला गया। रुपये लेकर लौट आया। तीनों ने एक दूकान में जाकर डेढ़ सौ रुपयों में एक चांदी की थाली और एक सोने का लोटा खरीदा। श्रीमंत ने उन्हें उन यात्रियों के हाथ देकर अपनी कृतज्ञता प्रकट की।

उन्हें भेजकर श्रीमंत सराय में लौट आया और अपनी पत्नी से बोला– "तुम नाहक़ सभी लोगों पर शक करती हो! वे लोग रंगपुर से लौट आये हैं!" इन शब्दों के साथ उसने सारी कहानी सुनाई।

लक्ष्मी ने थैली खोलकर देखा तो उसमें रुपये न थे। उसके मुँह से बात न निकली। उसने सोचा कि उन दोनों को चोर साबित करने पर ही श्रीमंत की आँखें खुल सकती हैं। यह सोचकर लक्ष्मी ने श्रीमंत से कहा–"तुम ठीक कहते हो! वे दोनों बड़े ही सज्जन व्यक्ति हैं। इस बार वे दिखाई देंगे तो हमें उनका आदर-सत्कार करना होगा!"

इसके बाद लक्ष्मी ने अपने गहने बेचकर दूसरे तीर्थ के लिए यात्रा की तैयारी की। उस दंपति को भोले समझकर चोरों के मन में लोभ और बढ़ गया। दूसरे तीर्थ में वे दोनों चोर श्रीमंत को फिर दिखाई दिये। उसने बड़े ही स्नेह से उन्हें पुकारा, अपने कमरे में ले गया और अपनी पत्नी से उनका परिचय भी कराया।

लक्ष्मी ने उन्हें देखते ही भोले स्वर में कहा—"आइये! पधारिये! रंगपुर में हमारे घर के सभी लोग कुशल हैं न? आप दोनों हमारी बड़ी मदद कर रहे हैं।"

चोरों ने लक्ष्मी के इस व्यवहार को देख समझ लिया कि यह भी अपने पति की तरह भोली और बावली है। लक्ष्मी ने उन्हें प्रेम से मिठाइयाँ खिलाईं, तब कहा—"आप लोग कृपया हमारी एक और मदद कीजिएगा!"

"हम लोग तो आप के वास्ते विशेष रूप से कोई कष्ट नहीं उठा रहे हैं। हम शीघ्र ही फिर से रंगपुर जानेवाले हैं। कोई खबर हो तो बता दीजिए।" दोनों चोरों ने एक साथ कहा।

"तब तो रंगपुर जाने के पहले एक बार हम से मिलते जाइएगा।" लक्ष्मी ने इन शब्दों के साथ उन्हें विदा किया।

इसके बाद लक्ष्मी ने सराय के दूसरे कमरों में ठहरे हुए यात्रियों को सारी बातें सुनाईं, यह भी कहा कि इसके वास्ते वह एक नाटक रचेगी, इसमें मदद करने

के लिए उसके ससुर की उम्र के एक बूढ़े तथा सास की उम्र की एक बूढ़ी तैयार हो जावे। तब ऐसे दो व्यक्तियों को लाकर लक्ष्मी ने अपने कमरे में एक खाट पर बिठाया। लोग यह समझे कि वे दोनों अभी गाँव से आये हैं, इसके लिए एक थैली, एक लाठी और जूतों का जोड़ा भी खाट के पास रखा। उसने श्रीमंत को चेतावनी दी कि वह कुछ बोले नहीं, बल्कि तमाशा देखते रहे।

थोड़ी देर में दोनों चोर कमरे में पहुँचे। नये लोगों को देख सहम गये।

"आइए, पधारिये! रुक क्यों गये? ये हैं मेरे ससुर गोविंदगुप्त और ये मेरी सास हैं।" लक्ष्मी ने उनका परिचय कराया।

चोर घबराकर भागने के लिए किवाड़ की ओर ताकने लगे, मगर काल के दूतों की भांति चार जवान उनकी ओर क्रोध भरी दृष्टि प्रसारित करते खड़े दिखाई दिये।

लक्ष्मी ने अपनी कमर कसकर गरजकर पूछा—"मेरे पति ने जो चांदी की थाली और सोने का लोटा दिया, उन्हें तुम लोगों ने क्या किया? नहीं बताओगे तो तुम्हारी हड्डी-फसली तोड़ी जाएगी!"

"माफ़ कीजिएगा! हम ने लोभ में पड़कर दगा दिया। हम न रंगपुर जानते हैं और न इन्हें ही जानते हैं।" इन शब्दों के साथ वे लक्ष्मी के पैरों पर गिर पड़े।

श्रीमंत ने गुस्से में आकर उनकी पीठ पर लाठी बरसाते हुए कहा—"तुम ने मुझे कैसा धोखा दिया! मेरे साथ कैसा दगा किया?" फिर क्या था, चोट खाकर दोनों चोर भाग खड़े हुए। इस कार्य में जिन लोगों ने लक्ष्मी की मदद की थी, उनके प्रति लक्ष्मी ने कृतज्ञता प्रकट की। उस दिन से श्रीमंत का अपनी पत्नी की अक़्लमंदी पर विश्वास जम गया। इस प्रकार वह अपनी पत्नी के द्वारा व्यावहारिक ज्ञान प्राप्तकर एक सच्चा व्यक्ति बना।
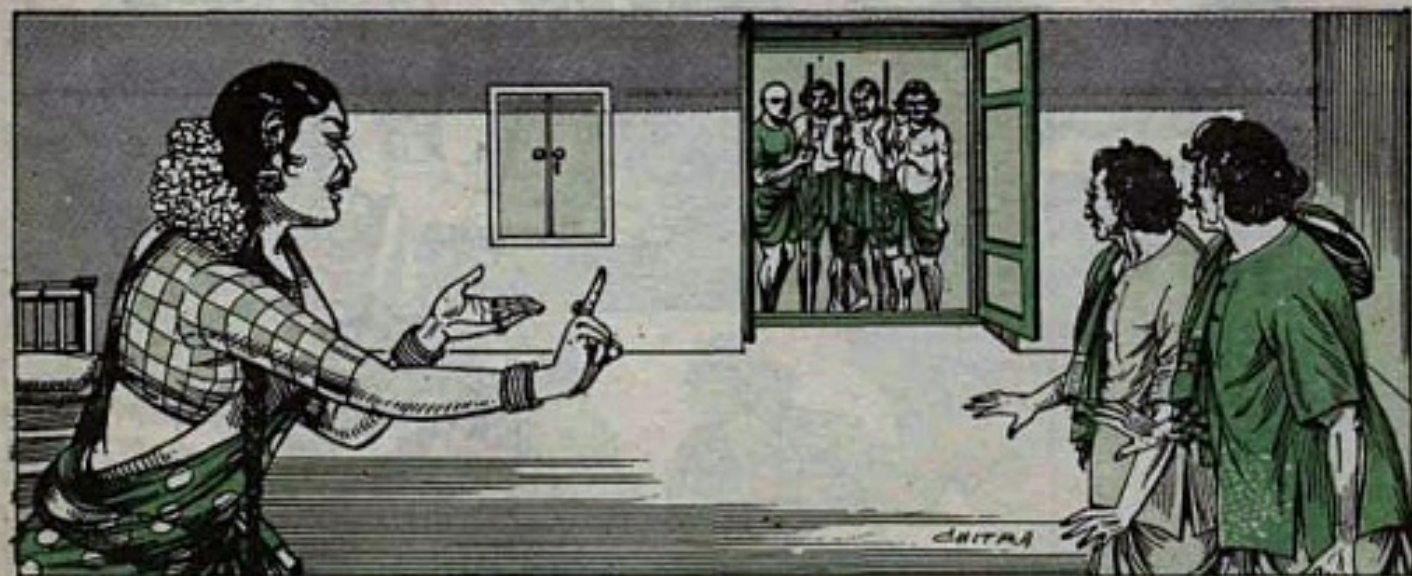
चौर्य-शास्त्र

कई साल पहले की बात है। एक डाकू ने बड़े-बड़े डाके डालकर काफ़ी धन कमाया, पर वह एक बार भी पकड़ा न गया। वृद्ध होने पर उसने डाका डालना बंद किया और धारानगर पहुँचा। वहाँ पर अपने को एक विदेशी व्यापारी बताकर निवास करने लगा। उस डाकू का नाम धारादत्त था।

वृद्धावस्था में पहुँचने पर धारादत्त की तबीयत अकसर बिगड़ने लगी। उस नगर में सोमशास्त्री नामक एक वैद्य था जो बीमारियों का निदान करने में प्रसिद्ध था। सोमशास्त्री की दवाइयों से धारादत्त की तबीयत सुधरने लगी थी।

उन्हीं दिनों में अचानक सोमशास्त्री का निधन हो गया। धारादत्त यह सोचकर डर गया कि अब उसका सही इलाज करनेवाला कोई दूसरा वैद्य न होगा। मगर सोमशास्त्री का शिष्य सुमंत नामक व्यक्ति शास्त्री की जगह इलाज करते शीघ्र ही इतना प्रसिद्ध हुआ कि वह अपने गुरु की बराबरी करने लगा। वह भी काफ़ी प्रसिद्ध हो गया।

धारादत्त जब पुनः बीमार पड़ा, तब वह सुमंत के यहाँ इलाज कराने गया। धारादत्त के पास रंगनाथ नामक एक लड़का था। वह गाड़ी में बैल जोतकर धारादत्त को सुमंत के यहाँ ले जाने के लिए निकल पड़ा।

रास्ते में एक दूकान के सामने लोगों की बड़ी भीड़ जमा थी। एक युवक को खंभे से बांधकर लोग पीट रहे थे। रंगनाथ गाड़ी से उतर पड़ा, थोड़ी देर बाद लौटकर यह समाचार दिया कि उस युवक को लोग क्यों पीट रहे हैं। बात यह थी कि वह युवक चोरी करते पकड़ा

विमला यादव

वैद्य फिर से पैदा न होगा! लेकिन आपने उनकी कमी की पूर्ति की। यह तो बड़ी बात मानी जाएगी!" धारादत्त ने कहा।

"महाशय! यह सब मेरे गुरु की कृपा ही है। उन्होंने अपनी मृत्यु के पूर्व जो कुछ सीखा और अनुभव प्राप्त किया था, उन सारी बातों को विस्तार से संग्रह करके एक बहुत बड़ा वैद्य शास्त्र रचा। मैं उसी ग्रंथ की मदद से बीमारों का इलाज कर पाता हूँ।" सुमंत ने कहा।

इसके बाद धारादत्त सुमंत के यहाँ से घर लौटा। सुमंत की दवाइयों का धारादत्त पर अच्छा असर हुआ। इस पर उसके मन में एक विचार आया। एक अनुभव पूर्ण वैद्यशास्त्र ग्रंथ के कारण ही तो सुमंत एक प्रसिद्ध वैद्य के चरण-चिह्नों पर चलकर अपना पेशा चला सकता है। इसी प्रकार चौर्य शास्त्र के संबंध में भी एक योग्य व्यक्ति यदि कोई ग्रंथ लिखे तो चोरी करते एक दूकान पर पकड़े गये युवक जैसे असमर्थ चोरों के पकड़ जाने व भयंकर दण्ड भोगने का डर न रहेगा। यह सोचकर चोरी करने में अपने अनुभव व निपुणता का परिचय देते हुए धारादत्त ने चोर-शास्त्र लिखने का निश्चय किया।

प्रारंभ में उसने अपने अनुभवों का स्मरण किया, चोरों के सामने उपस्थित होनेवाली

गया था। यह समाचार दे रंगनाथ ने बैलों को हांक दिया, गाड़ी चलने लगी।

धारादत्त को उस युवक के प्रति बड़ी दया आई। उसने सोचा कि वह युवक कोई भोला होगा। चोर विद्या में निपुणता रखनेवाला कभी पकड़ा नहीं जाता। धारादत्त ने कई साल तक डाके डाले, पर वह कभी पकड़ा नहीं गया।

गाड़ी सुमंत के चिकित्सालय में पहुँची। सुमंत ने धारादत्त की बीमारी का निदान करके दवाइयाँ दीं। इसके बाद दोनों के बीच बातचीत होने लगी।

"वैद्यराज! सोमशास्त्री की मृत्यु के बाद लोगों ने सोचा था कि ऐसा महान

समस्याओं की याद की और उसने उन समस्याओं को कैसे हल किया, इन सबका विवरण देते हुए धारादत्त ने ग्रंथ लिखना शुरू किया। थोड़े ही समय में ग्रंथ की रचना समाप्त हुई। उसे एक बार पढ़कर धारादत्त प्रसन्न हो उठा।

धारादत्त के द्वारा ग्रंथ लिखने की बात रंगनाथ जानता था। उसने यह भी भाँप लिया कि वह ग्रंथ एक चोर-शास्त्र है। उसने समझ लिया कि उसके मालिक को चोर-विद्या में ऐसी निपुणता कैसे प्राप्त हुई है? मगर धारादत्त ने सोचा कि रंगनाथ ने उसका रहस्य भाँप नहीं लिया है और भाँप भी ले तो उसके द्वारा उसकी कोई हानि नहीं हो सकती।

रंगनाथ को जब भी मौक़ा मिलता, चोर-शास्त्र पढ़ता गया। उसके मन में तरह-तरह के विचार उठने लगे। एक दिन वह चोर-शास्त्र की चोरी करके अपने मालिक के घर से भाग खड़ा हुआ।

यह बात मालूम होने पर धारादत्त विस्मय में आ गया। रंगनाथ जैसा बुद्धिमान तथा विश्वासपात्र व्यक्ति के द्वारा ऐसा करना धारादत्त को आश्चर्यजनक प्रतीत हुआ। इस घटना के थोड़े दिन बाद नगर में बड़ी ही विचित्र चोरियाँ होने

लगीं, पर चोर हाथ न लगता था। चोरी के विवरण सुनने पर धारादत्त को अपने ग्रंथ की बातें याद आने लगीं। इस पर यह बात स्पष्ट हो गई कि धारादत्त ने अपने ग्रंथ में चोर विद्या की जो ख़ूबियाँ बताई थीं, उनका प्रयोग करके चोरियाँ करनेवाला व्यक्ति रंगनाथ ही है।

दिन प्रति दिन चोरियों की संख्या बढ़ने लगी। धारादत्त ने अनुमान लगाया कि किसी न किसी दिन रंगनाथ उसके घर को भी लूटने की योजना बनायेगा! अपने मालिक के पास जितना धन है, उसका पता रंगनाथ को छोड़ नगर का कोई भी व्यक्ति जानता न था। अलावा

इसके वह धारादत्त का दैनिक जीवन व घर का पता भी जानता था।

इन विचारों की वजह से धारादत्त अपनी मानसिक शांति खो बैठा। अनेक दिन तक चिंता करके आखिर उसने यह योजना बनाई कि रंगनाथ अगर उसके घर चोरी करने आएगा तो उसे कैसे पकड़ा जाय! इस बीच नगर में यह ढिंढोरा पीटा गया कि जो चोर को पकड़ा देगा, उसे एक लाख रुपये का पुरस्कार दिया जाएगा।

धारादत्त की कल्पना के अनुसार रंगनाथ एक दिन उसके घर चोरी करने आया और पकड़ा गया। इस पर धारादत्त ने रंगनाथ से कहा—"अबे, चोर शास्त्र को चुराने मात्र से तुम यह सोचते हो कि मेरे घर में भी चोरी कर सकते हो?"

"उस चोर-शास्त्र पर विश्वास करके ही मैंने यों किया है। जो शास्त्र किसी काम का नहीं है, वह किसलिए?" इन शब्दों के साथ रंगनाथ ने थैली में से चोर शास्त्र निकालकर धारादत्त के मुंह पर फेंक दिया।

धारादत्त की समझ में न आया कि रंगनाथ के साथ कैसा व्यवहार करे? उसे राजा के हाथ सौंपकर एक लाख रुपये का पुरस्कार लिया जा सकता था। मगर ऐसा करने से रंगनाथ उसका सारा रहस्य प्रकट कर देगा। इसलिए उसने रंगनाथ से वात्सल्यपूर्वक कहा—"रंगनाथ! तुमने गलती की, कोई बात नहीं। आइंदा कभी ऐसा न करना। मेहनत करके अपनी ज़िंदगी बिताओ! अब तक तुम ने काफी धन लूटा, उस धन से कोई व्यापार शुरू करो।" यों समझाकर धारादत्त ने उसे मुक्त किया।

इसके बाद धारादत्त ने सोचा कि रंगनाथ उसका घर लूटेगा, इस कल्पना मात्र से कैसे उसकी मानसिक शांति नष्ट हो गई। इसलिए चोर-शास्त्र वैद्य-शास्त्र की भांति लोगों का उपकार करनेवाला नहीं है। यह सोचकर उसने उसी वक़्त चोरशास्त्र को जला डाला।

संदेह का भूत

एक गाँव में दुर्गादत्त नामक एक व्यापारी था। वह न केवल कंजूस था, बल्कि शंकालू भी था। उसके यहाँ अपने पूर्वजों का एक मकान और उसके चारों ओर बड़ा अहाता भी था। उस अहाते में तरकारी पैदा कर और धन कमाने की इच्छा दुर्गादत्त के मन में पैदा हुई। उसने सोचा कि बाग का काम देखने के साथ घर की रखवाली करने के लिए भी एक ही नौकर नियुक्त किया जाय तो बड़ी रक़म की बचत हो सकती है।

दोनों काम संभालने के लिए नीलकंठ नामक एक व्यक्ति को नियुक्त किया गया। शीघ्र ही दुर्गादत्त को पता चला कि नीलकंठ बागवानी में बड़ा ही कुशल है। लेकिन दुर्गादत्त के मन में यह शंका पैदा हो गई कि दिन भर कड़ी मेहनत करनेवाला व्यक्ति क्या रात भर जागकर घर का पहरा दे सकता है? इसलिए नीलकंठ रात को ठीक से पहरा देता है या नहीं, इसकी जांच करने के लिए दुर्गादत्त एक दिन रात को सर पर अंगोछा ओढ़े पिछवाड़े का किवाड़ खोलकर बाहर आया। किवाड़ खोलने पर पुराने होने के कारण 'किर्र' की आवाज़ हुई।

घर के आंगन में पहरा देनेवाला नीलकंठ यह आवाज़ सुनकर हाथ में लाठी लिये पिछवाड़े की तरफ़ भागा। उसने देखा कि एक नक़ाबवाला व्यक्ति रसोई घर की ओर बढ़ रहा है। नीलकंठ अपनी लाठी उठाये उसे मारने को हुआ।

इसी समय दुर्गादत्त ने मुड़कर देखा और चीख उठा। नीलकंठ अपने मालिक की आवाज़ पहचानकर बोला—"मालिक! आप हैं क्या? आधी रात के वक़्त आप इस ओर क्यों आये?"

कुमार वर्मा

"अरे नीलकंठ! मैं यह देखने आया कि तुम ठीक से पहरा देते हो या नहीं, देख लूं! अच्छी बात है! तुम सोये बिना रात को ठीक से पहरा देते हो! मैं जब-तब इस तरह तुम्हारी परीक्षा लेने आया करूंगा। इसलिए तुम लाठी चलाने के पहले ठीक से देख लो कि घर में कौन घुस रहा है!" यों समझाकर दुर्गादत्त घर के भीतर चला गया। दुर्गादत्त का यह विचार था कि इस प्रकार आगाह करने पर नीलकंठ और सावधानी के साथ पहरा देगा!

मगर ये बातें चोरी करने की ताक में बैठे एक चोर के कानों में पड़ गईं। वह इधर कई दिनों से दुर्गादत्त के घर में चोरी करने की ताक में बैठा हुआ था। मगर नीलकंठ की सावधानी के कारण उसे मौक़ा नहीं मिल रहा था। लेकिन दुर्गादत्त की बातें सुनने के बाद उसे एक उपाय सूझ पड़ा। वह लगभग दुर्गादत्त जैसे भारी शरीरवाला था।

दूसरे दिन रात को उसी वक़्त चोर दुर्गादत्त जैसे कपड़े पहनकर अहाता लांधकर रसोई घर की ओर बढ़ा। वहां पर वह रसोई घर के ताले को नकली चाभी से खोलने के प्रयत्न में था।

पिछली रात की भांति पिछवाड़े में आहट पाकर नीलकंठ उस ओर चला आया, ताला खोलनेवाले चोर को देख उसने सोचा कि दुर्गादत्त फिर से उसकी

जाँच करने आया है। अपने मालिक के द्वारा रोज़ इस तरह उसकी परीक्षा लेना नीलकंठ को बुरा लगा। उसने सोचा कि अपने मालिक को इसका अच्छा सबक़ सिखलाना है। चोर ने ताला खोलकर ज्यों ही रसोई में प्रवेश किया, त्यों ही नीलकंठ दबे पाँव पहुँचा। रसोई घर के किवाड़ बंद कर बाहर चटकनी लगा दी।

नीलकंठ ने सोचा कि इससे दुर्गादत्त की अक़्ल ठिकाने लग जाएगी और आइंदा वह उसकी परीक्षा न लेगा!

उधर चोर तो रसोई में फँस गया था। उसे लगा कि दुर्गादत्त की भांति वेषधारण करने पर भी नीलकंठ ने उसे चोर समझ लिया है; फिर भी वह रसोई घर की क़ीमती चीजें हड़पकर गठरी बांधे भागने के मौक़े का इंतजार करने लगा।

इतने में चोर को लगा कि कोई बाहर से चटकनी खोल रहा है। चोर एक कलछी हाथ में लिये किवाड़ की ओट में खड़ा रह गया। इसी समय कोई किवाड़ खोलकर रसोई में आ पहुँचा। चोर ने न आँव देखा, न ताव! उस व्यक्ति के सिर पर ज़ोर से दे मारा। उसका गला पकड़कर उसके हाथ-पैर बांध दिये और गठरी लेकर अहाते की दीवार फांदकर भाग गया।

सवेरा होते ही नीलकंठ रसोई की ओर गया। रसोई घर के किवाड़ खुले

हुए थे और भीतर दुर्गादत्त हाथ-पैर बंधे पड़ा हुआ था। रसोई की सारी चीजें गायब थीं।

नीलकंठ ने झट से अपने मालिक के बंधन खोल दिये और पूछा–"मालिक! यह सब क्या है? आप को किसने इस तरह बांध दिया?"

"परसों रात को पिछवाड़े के किवाड़ की आवाज़ सुनकर तुम आ गये, मैंने सोचा कि चोर बिना आहट किये चला आएगा, इसलिए आवाज़ करने से रोकने के लिए किवाड़ों में तेल लगाकर तुम्हारी जांच करना चाहा कि चोर के आने पर तुम पता लगा सकोगे या नहीं, इस ख्याल से कल रात को बाहर आया। रसोई घर के किवाड़ों पर चटकनी लगी थी। ताला खुला हुआ था, मैं आश्चर्य में आकर यह सोचता रहा कि यह किसकी करतूत है, फिर चटकनी खोलकर रसोई घर के अन्दर चला गया। पहले से ही एक बदमाश चोर भीतर था, उसने अचानक मुझ पर हमला करके यों बांध दिया। रात में चोर घर में घुसकर घर लूट रहा था तो तुम क्या कर रहे थे?" दुर्गादत्त ने नीलकंठ से पूछा।

अब नीलकंठ को मालूम हो गया कि उसने अपना मालिक समझकर जिस व्यक्ति को रसोई घर में बंद किया, वह चोर था। मगर उसने अपनी भूल मालिक पर प्रकट किये बिना ही कहा–"क्या आप समझते हैं कि मैंने चोर को घर के अन्दर घुसते नहीं देखा है? उसका दीवार फांदना, रसोई का ताला खोलना, यह सब मैं देख ही रहा था, उसके अन्दर जाने पर किवाड़ बंद करके बाहर मैंने ही तो चटकनी लगा रखी थी! मैंने जिस चोर को पकड़ लिया था, उसको आपने ही छोड़ दिया और मुझ पर दोषारोपण कर रहे हैं? यह कैसा अन्याय है मालिक?"

दुर्गादत्त का चेहरा पीला पड़ गया। इसके बाद उसने फिर कभी नीलकंठ की परीक्षा नहीं ली।

न्याय का पालन

प्राचीन काल में वैशाली नगर पर राजा चन्द्रसेन शासन करता था। वह बड़ा ही धर्मात्मा तथा प्रजा-वत्सल था। लोगों में यह विश्वास था कि राजा चन्द्रसेन के शासन में किसी प्रकार के भेदभाव के बिना सब को समान रूप से न्याय मिलता है।

एक दिन अंत:पुर के एक सेवक ने विनयपूर्वक राजा से फ़रियाद की– "महाराज, दरबार से संबंधित एक युवक प्रति दिन रात को मेरे घर आकर धमकी देता है कि मैं अपनी कन्या का विवाह उसके साथ कर दूं, वरना वह मेरे सारे परिवार का विनाश करेगा! आप ही मुझे इस विपदा से बचा सकते हैं।"

राजा ने कहा–"अगर वह युवक कल भी तुम्हारे घर पहुँचकर तुम्हें धमकी दे तो मुझसे बता दो। मैं तुम्हारे प्रति ज़रूर न्याय करूँगा।"

दूसरे दिन सेवक ने राजा की सेवा में पहुँचकर शिकायत की कि वह युवक पुन: आकर उसे धमकी दे रहा है।

उस दिन संध्या को राजा अपना वेश बदलकर सेवक के साथ उसके घर पहुँचा। थोड़ी देर बाद सेवक ने राजा को सूचना दी कि वह युवक चला आ रहा है। राजा ने एक कोने में छिपकर झट दीपक बुझा दिया।

इसके बाद युवक घर के भीतर आया। राजा ने अंधेरे में ही उस युवक को अपनी तलवार से मार डाला। तब सेवक को आदेश दिया कि वह दिया जलाकर ले आवे। दीपक की रोशनी में राजा ने उस मृत युवक को देख कहा–"भगवान! तुम अत्यंत कृपालू और दयावान हो! तुमने मेरी रक्षा की!"

इसके उपरांत राजा ने सेवक से पूछा– "तुम्हारा रसोई घर कहाँ?"

राजेश शर्मा

दोनों जब रसोई घर में पहुंचे। तब राजा ने सेवक को खाना परसोने की आज्ञा दी और ताबड़-तोड़ खाना खाकर अपनी भूख मिटा ली।

राजा की यह करनी सेवक की समझ में न आई, वह आश्चर्य में आ गया। वह राजा की ओर ताकता ही रह गया। फिर वह सोचने लगा कि उसके द्वारा फ़रियाद करते ही स्वयं राजा का उसके घर आना, उसके साथ अन्याय करनेवाले युवक का खुद वध करना, वध करने के पूर्व दीपक बुझाना, रोशनी में मृत युवक को देख भगवान के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना, इन सबके बाद उसीके घर रूखा-सूखा भोजन करना, इन सब घटनाओं ने उसे आश्चर्य में डाल दिया। सेवक से रहा न गया, उसने राजा के सामने अपनी शंकाएँ प्रकट कीं।

खाना समाप्त कर हाथ-मुंह धोते हुए राजा ने सेवक की शंकाओं का यों समाधान दिया-"दो दिन पूर्व तुमने जब मुझ से फ़रियाद की, तब मैंने संदेह किया कि तुम्हें धमकी देनेवाला युवक और कोई नहीं हो सकता, मेरा पुत्र ही होगा! मेरा यह दृढ़ विश्वास था कि दूसरे लोग ऐसी हिम्मत नहीं रखते। चाहे वह जो भी हो, उसे दण्ड अवश्य मिलना ही चाहिए। मैंने इसलिए दीपक बुझाया कि यदि वह युवक मेरा पुत्र हो तो शायद मैं उसका वध न कर पाऊँगा। उसके वध करने के बाद इसलिए दीपक मंगाया कि देख लूं, वह युवक कौन है? रोशनी में देखा तो वह मेरा पुत्र न था, इसीलिए मैंने भगवान के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की। सच मानो कि जब से मैंने तुम्हारी 'फ़रियाद सुनी, तब से तुम्हें न्याय के मिलने तक मैंने खाना न खाया। बड़ी भूख लगी थी, इसीलिए मुझ से रह न गया और मैंने तुम्हारे घर खाना खाया।"

यों समझाकर राजा अपने महल को लौट पड़ा। राजा की न्यायप्रियता पर सेवक की आँखों से आनंद बाष्प झर उठे।

हनुमान का वध करने की धमकी देते हुए हथियार लेकर उठ खड़े हुए विशंभु इत्यादि को विभीषण ने बैठने का संकेत किया, तब रावण को प्रणाम करके यों कहा–

"बुजुर्गों का कहना है कि जब साम, दाम व भेदोपायों के द्वारा कोई कार्य सिद्ध नहीं होता, तभी दण्डोपाय का सहारा लेना है। आप रामचन्द्रजी की शक्ति का गलत अंदाज न लगाइए। हनुमान ने समुद्र को पार करके इतनी सारी हलचल मचाई है तो इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ईश्वर उनके पक्ष में हैं। कहा जाता है कि रामचन्द्र ने खर, दूषण आदि राक्षसों का वध किया तो इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप रावण सीताजी को ले आये हैं। मगर बात यह है कि जब वे राक्षस रामचन्द्र को मारने गये तभी उन्होंने उन राक्षसों का वध किया है। आत्मरक्षा करना कोई अपराध नहीं है। हमने सीताजी को ले आकर खतरे को मोल लिया है। रामचन्द्रजी के द्वारा लंका नगर पर आक्रमण करने के पहले ही उनके हाथ सीताजी को सौंपना उत्तम होगा! मैं जो कुछ बता रहा हूँ, वह सत्य और यथार्थ है। क्रोध के कारण सुख तथा धर्म का भी विनाश होता है। मेरे कहे अनुसार करेंगे तो हम सब सुखी रह सकते हैं।"

विभीषण की सलाहें रावण को पसंद नहीं आईं। उसने क्रोध में आकर कहा–

१९. विभीषण की शरण

"मुझे किसी का डर नहीं है। इंद्र को अपने साथ भी लावे, तब भी रामचन्द्र युद्ध में मेरे सामने ठहर नहीं सकते!"

दूसरे दिन रावण युद्ध तंत्र के संबंध में अपने मंत्रियों से मंत्रणा करने के लिए रत्नालंकृत स्वर्ण रथ पर सवार हो मंत्रणा गृह की ओर चल पड़ा। उसके पीछे सशस्त्रधारी राक्षस चल पड़े। मंत्रणागृह में प्रवेश करते ही रावण ने दूतों को भेजकर प्रमुख राक्षसों को बुला भेजा। राक्षस प्रवेश करके अपने आसन पर बैठ गये। उनमें विभीषण, शुक तथा प्रहस्त भी थे। रावण ने उनके लिए विशेष प्रकार के आसनों का प्रबंध कराया था।

सभा में शांति छाई हुई थी। सभी लोग इस विचार से उत्सुकता प्रदर्शित कर रहे थे कि न मालूम रावण क्या कहनेवाले हैं। तभी रावण ने प्रहस्त की ओर मुड़कर कहा—"सेनापतिजी! नगर की सुरक्षा के हेतु पराक्रमी योद्धाओं को नियुक्त करो।"

प्रहस्त ने तत्काल नगर की रक्षा के लिए सेना को नियुक्त करके पूछा—"सम्राट! और क्या प्रबंध करना होगा?"

रावण ने सभासदों को संबोदित कर यों कहा: "धर्म, अर्थ तथा काम के विषयों में जब संकट आ पड़ता है, तब उचित और अनुचित का निर्णय करने में आप लोग समर्थ हैं। आप लोगों ने अब तक जो निर्णय लिये, उनसे अच्छे परिणाम ही निकले हैं। मैं जो बात कहने जा रहा हूँ, वह सिवाय कुंभकर्ण के आप सब जानते हैं। वह गत छे महीनों से सो रहा था, अभी अभी यहाँ पर आया हुआ है।

मैं दण्डकारण्य से राम की पत्नी को ले आया हूँ। सीता जैसी सौंदर्यवती तीनों लोकों में दुर्लभ है। मैं उस पर मोहित हूँ, मगर उसने मुझ से एक वर्ष की अवधि माँगी है, अब तक मेरी वशवर्तिनी नहीं हुई है। मैंने उसे एक वर्ष की अवधि दी है। संभवतः उसका विचार होगा कि इस बीच रामचन्द्र यहाँ पर आ जायेंगे। लेकिन

समुद्र को पार करके रामचन्द्र यहाँ तक कैसे पहुँचेंगे? यदि पार कर आ गये तो हमें क्या करना है? एक बंदर आकर यह सारा बीभत्स पैदा कर गया है! इसलिए आप लोग हमारे कर्तव्य पर भली भाँति विचार कीजिए! समुद्र के उस पार राम, लक्ष्मण तथा सुग्रीव वानर सेना के साथ तैयार बैठे हैं। यदि मैं सीता को राम के हाथ न सौंप दूं तो क्या आप लोग राम और लक्ष्मण का वध कर सकते हैं? क्या वानर सेना समुद्र को लांघकर आ सकती है? इन सारी बातों पर विचार कीजिए!"

रावण के मुँह से ये बातें सुनने पर कुंभकर्ण को बड़ा क्रोध आया। उसने रावण से कहा—"आप जब बलात्कार पूर्वक रामचन्द्रजी की पत्नी को ला रहे थे, तब आप ने किसी से सलाह ली थी? इस वक़्त हमारी सलाह क्यों माँगते हैं? उस वक़्त आप ने यह नहीं सोचा कि सीताजी का अपहरण करना कैसा ख़तरनाक है! लेकिन भाग्यवश अब तक रामचन्द्र ने आप का वध नहीं किया। फिर भी अब आप को डरने की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं आप के सभी शत्रुओं का वध करूँगा। यदि मैं लोहे का गदा लेकर युद्ध भूमि में जाता हूँ तो इंद्र भी डर के मारे भाग जायेंगे। मैं राम और लक्ष्मण का वध करके वानरों को खा डालूँगा। आप एक दम निश्चित रहिए।"

ये बातें सुन रावण रूठे हुए से प्रतीत हुए। इस पर उनको प्रसन्न करने के ख़्याल से महापार्श्व ने यों कहा: "आप सीताजी के साथ सुख भोगने के विचार से उन्हें यहाँ तक ले आये हैं, ऐसी हालत में चुप क्यों हैं? उनके साथ बलात्कार कीजिए! आप को रोकनेवाला ही कौन है? इसलिए यह सोचकर आप को डरने की आवश्यकता नहीं है कि इसका क्या परिणाम होगा? कुंभकर्ण तथा इंद्रजित के रहते कोई भी सामने आ जावे, आप को डरने की ज़रूरत नहीं है।"
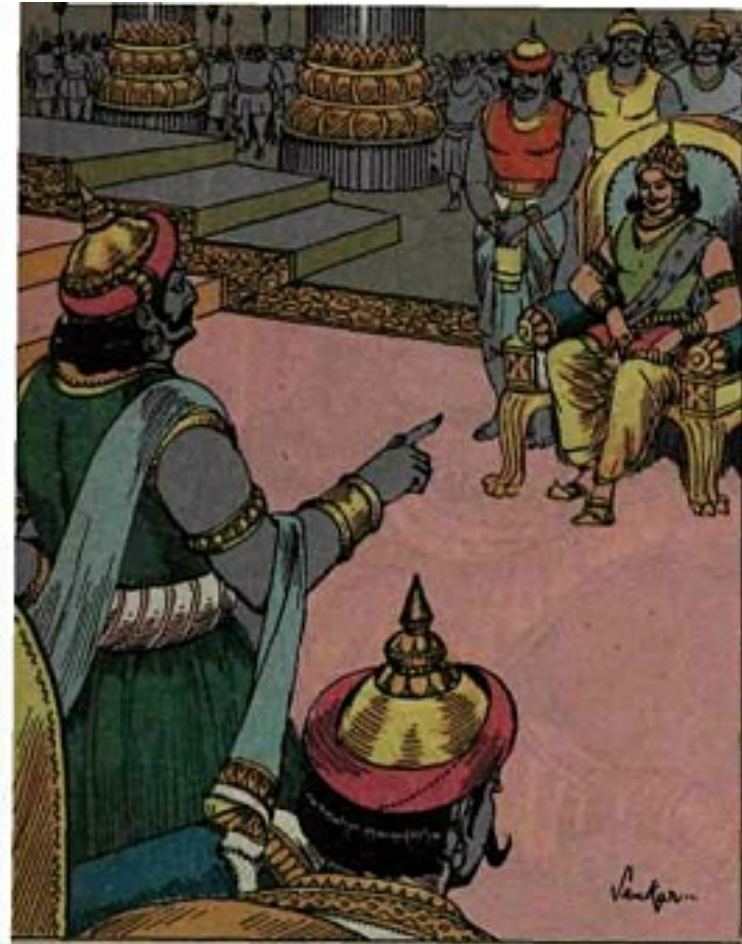
महापार्श्व की बातों पर प्रसन्न हो रावण बोला–"इसके पीछे एक रहस्य छिपा हुआ है। मैंने इसके पूर्व एक भूल की थी। ब्रह्मदेव के घर जानेवाली पुंजिकस्थला नामक अप्सरा को देख मैंने बलात्कार पूर्वक उसके साथ सुख भोगा। शायद पुंजिकस्थला ने यह बात ब्रह्मदेव से कही होगी। उन्होंने मुझे सावधान करते हुए शाप दिया था, यदि आइंदा मैं पराई नारी के साथ बलात्कार करूँ तो मेरा सिर सौ टुकड़े हो जाएगा। इसीलिए मैं सीताजी के साथ बलात्कार करने से डरता हूँ। परंतु मेरे वेग और गमन का ज्ञान न रखने की स्थिति में रामचन्द्र मुझ पर आक्रमण करने आ रहे हैं। वे अज्ञानी हैं, इसीलिए मृत्यु के साथ छेड़-छाड़ कर रहे हैं।"

कुंभकर्ण तथा रावण की बातें सुनने के बाद विभीषण ने समझाया–"राक्षस राजा! आप ने सीताजी की कामना की क्यों की? वे तो एक महासर्प हैं। उनके वक्ष में फन है। दुख रूपी जहर है। उनकी मुस्कुराहट में जबड़े हैं। उनके हाथ की उंगलियाँ सर्प के सिर हैं। इसलिए मेरी बात मानकर वानर योद्धाओं का लंका में प्रवेश करने के पहले ही आप सीताजी को रामचन्द्रजी के हाथ सौंप दीजिए! आप सच मानिये कि कुंभकर्ण, इंद्रजित, महापार्श्व तथा अन्य राक्षस भी युद्ध क्षेत्र में रामचन्द्रजी के सामने ठहर नहीं सकते। रामचन्द्र आपको प्राणों के साथ नहीं छोड़ेंगे।"

प्रहस्त ने विभीषण की बातों को काटते हुए कहा कि रावण को कोई रोक नहीं सकता। इन्द्रजित ने विभीषण की अवहेलना की कि वे तो कायर हैं, फिर कहा–"पुलस्त्य वंश में आप जैसे भीरू दूसरा कोई नहीं है। राम और लक्ष्मण का वध करने के लिए राक्षस वीरों में केवल एक ही पर्याप्त है! आप डरते ही क्यों हैं? इंद्र को पराजित कर देवताओं को तंग करनेवाला मैं क्या मनुष्यों को पराजित नहीं कर सकता?"

"बेटे! तुम अभी बालक के समान हो, युद्ध के मामलों में सलाह देने का अनुभव तुम नहीं रखते। तुम जो बातें बता रहे हो, उनके द्वारा राक्षस-वंश की हानि होगी! रामचन्द्रजी के बाणों के सामने कोई ठहर नहीं सकते। उन्हें सीताजी को सौंप देना सब तरह से हितकर होगा।" विभीषण ने पुनः समझाया।

रावण विभीषण की बातें सुन अपनी सहन शक्ति खो बैठा, उसकी निंदा करते हुए बोला–"तुम मेरे भाई ठहरे, इसलिए बच गये; पर ये ही बातें किसी दूसरे के मुंह से निकली होतीं तो उसी वक़्त उसका सिर काट दिया होता।"

विभीषण को भी क्रोध आया। उसने रावण से कहा–"आप मेरे बड़े भाई हैं; पिता के समान हैं। मैंने आप के हित की कामना से जो बातें कहीं, वे आप को पसंद नहीं आईं। आप को प्रसन्न करने की बातें बतानेवाले अनेक हैं। मैंने आप को क्रुद्ध बनाया, इसके लिए मुझे क्षमा कर दीजिए! मैं यहाँ से चला जा रहा हूँ, इसलिए आप सुखी रहिए। अपनी, लंका नगर तथा राक्षसों की भी रक्षा कर लीजिए।"

इसके बाद विभीषण अपना गदा लेकर और चार राक्षसों के साथ आसमान में उड़ा और राम तथा लक्ष्मणों के निकट आया। वानरों ने उन पाँचों को अपनी ओर आते देखा। सुग्रीव के मन में संदेह पैदा हुआ कि वे लोग या तो उनका वध करने आ रहे हैं, अथवा उनके रहस्यों का पता लगाने के लिए आ रहे हैं। यह बात सुग्रीव ने हनुमान तथा अन्य लोगों से बताई, उन लोगों ने पत्थर व पेड़ उठाकर आनेवाले राक्षसों का वध करने के लिए सुग्रीव की अनुमति माँगी।

ये लोग यों बात कर ही रहे थे, तभी विभीषण तथा उसके साथ आनेवाले अनल, शरभ, संपाती तथा प्रघस नामक राक्षस समुद्र को पार कर आसपान में ही ठहर गये। तब विभीषण ने सुग्रीव तथा

वानरों से भी उच्च स्वर में यों कहा–"दुष्ट तथा राक्षस राजा रावण का मैं छोटा भाई हूँ। मेरा नाम विभीषण है। रावण जटायु का वध करके सीताजी को ले आये हैं। सीताजी अत्यंत दुखी हो राक्षस नारियों की रक्षा में हैं। अनेक बार मैंने अपने बड़े भाई को समझाया कि सीताजी को रामचन्द्रजी के हाथ सौंप दे। परंतु दुर्भाग्य उनका पीछा कर रहा है, इसलिए औषध का काम करनेवाली मेरी हित की बातें उन्हें रुचिकर प्रतीत नहीं हुईं। उल्टे मेरी निंदा करते हुए मेरा अपमान भी किया है। इसीलिए मैं अपनी पत्नी तथा पुत्रों को छोड़ रामचन्द्रजी की शरण में आया हुआ हूँ। आप लोग उन्हें मेरे आगमन का समाचार दीजिए।"

ये बातें सुन सुग्रीव ने रामचन्द्रजी से कहा–"रावण का छोटा भाई विभीषण चार राक्षसों को साथ ले आपकी शरण में आया है। आप सावधान रहिए। ये राक्षस माया जानते हैं। कामरूपी तथा शूर होते हैं। सहसा उन पर विश्वास नहीं करना चाहिए। हो सकता है कि विभीषण रावण के द्वारा भेजा गया गुप्तचर हो। वह हमारे बीच रहते हम लोगों में मत भेद पैदा कर सकता है। अथवा मौक़ा पाकर हमारा वध कर सकता है। यह तो साक्षात् रावण का भाई है, शत्रु की ओर से आया हुआ है। इस पर हम कैसे विश्वास करें? मेरा विचार है कि इसके साथ इसके चारों अनुचरों का भी वध करना उत्तम है।"

सुग्रीव की बातें सुन रामचन्द्रजी अपने समीप में स्थित हनुमान इत्यादि से बोले–"सुग्रीव ने सोच-समझकर जो बातें कहीं, उन्हें तुम लोगों ने भी सुन ली हैं। तुम लोग भी अपनी अपनी सलाह बता दो।"

सर्व प्रथम अंगद ने यों कहा–"चाहे जो हो, शत्रु-पक्ष के व्यक्ति पर तत्काल विश्वास नहीं करना चाहिए। इससे
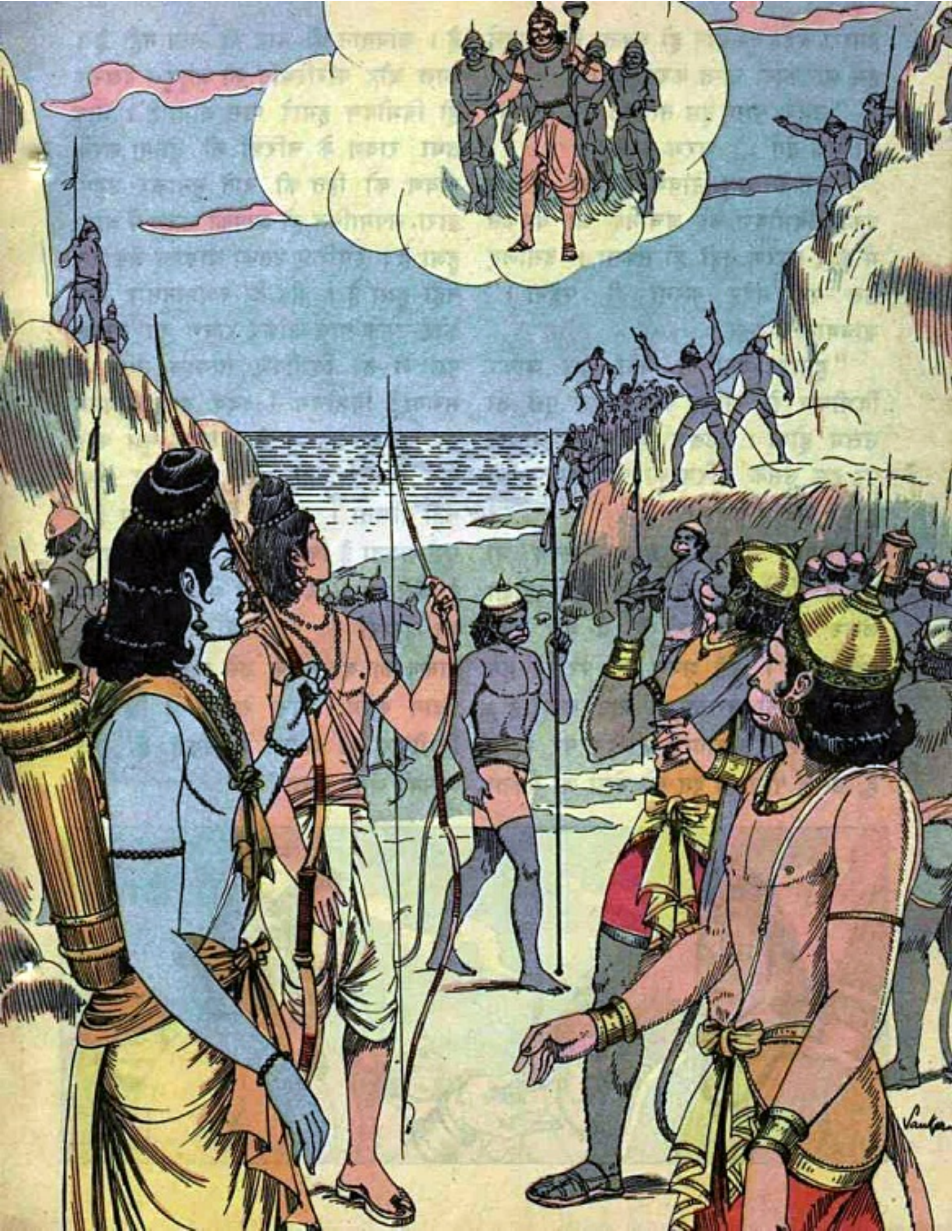
हमारा बड़ा नुक़सान हो सकता है। पहले हमें जानकारी प्राप्त करनी है।"

"उसके पास हम तत्काल एक गुप्तचर को भेज देंगे।" शरभ ने कहा।

"आपके शत्रु रावण के यहाँ से इस प्रकार विभीषण का अचानक आ धमकने में कोई कारण नहीं हो सकता। इसलिए उस पर संदेह करना ही पड़ेगा।" जांबवान ने कहा।

"हमारे यहाँ से कोई दूत जाकर विभीषण से रावण का वृत्तांत पूछे तो उत्तम होगा। उसके जवाबों के आधार पर हम उसके चरित्र का पता लगा सकते हैं।" मैंद ने कहा।

हनुमान ने यों सुझाया–"सबने जो सुझाव दिये कि विभीषण की परीक्षा लेकर उसे शरण देनी है, ये मुझे पसंद नहीं आये। उसे शरण देने पर ही हम उसके असली वृत्तांत को जान सकते हैं। इसका हल कैसे होगा? जो दूर पर रहता है, उसके पास तो दूत को भेजा जा सकता है। जांबवान की बात भी सत्य नहीं है। काल और परिस्थिति को अनुकूल देखकर ही विभीषण हमारे पास आया है। आप तथा रावण के चरित्रों की तुलना करके रावण को हित की बातें सुनाकर उसके द्वारा अपमानित हो आपकी शरण में आया हुआ है। इसलिए उसका आगमन अकारण नहीं हुआ है। मैंद के कथनानुसार यदि कोई उसके पास जाकर रावण का वृत्तांत पूछ ले तो विभीषण तत्काल उत्तर दे सकेगा? विभीषण ने स्वयं अपने आगमन का कारण बताया है। इसमें मुझे कोई दोष दिखाई नहीं देता, वह चोर जैसा नहीं दीखता। वह तो निडर लगता है। मुझे लगता है कि वह इस ख्याल से आया है, जैसे आपने वाली का वध करके सुग्रीव को वानरों का राज्य दे दिया, वैसे ही रावण का वध करके उसे लंका का राज्य प्रदान करेंगे। मेरा सुझाव है कि आप विभीषण को शरण दे सकते हैं, फिर आपकी जैसी इच्छा!"

मंत्रिभिर्हित संयुक्तैः समर्थोः मंत्र निर्णये,
मित्र्यैर्यापि, समानाथ्यैः, बांधवै रपि वा हितैः,
सहितो मंत्रयित्वा यः कर्मारंभान प्रवर्तयेत्,
दैवे च कुरुते यत्नम् त माहुः पुरुषोत्तमम् ॥ १ ॥

[जो व्यक्ति कोई कार्य करते समय अपने हितैषी, समर्थ मंत्री, अपने भागीदार मित्र तथा रिश्तेदारों से मंत्रणा करता है और भगवान पर भरोसा करके अपना कार्य प्रारंभ करता है, वही सबसे उत्तम व्यक्ति होता है ।]

एकोर्थम, विमृशे, देको धर्मे प्रकुरुते मनः
एकः कार्याणि कुरुते, तमाहुः मध्यमम् नरम् ॥ २ ॥

[किसी प्रयोजन के वास्ते एक धर्म को मन में रखकर अकेले जो कार्य करता है, वह व्यक्ति मध्यम है ।]

गुणदोषा वनिश्चित्य, त्वत्त्वा दैवव्यपाश्रयम्
करिष्या भीति यः कार्य मुपेक्षेत् स नराधमः ॥ ३ ॥

[जो व्यक्ति भला बुरा स्पष्ट रूप से विचार किये बिना, भगवान की सहायता का ख़्याल किये बिना कार्य प्रारंभ करके बीच में ही छोड़ देता है, वह अधम व्यक्ति हैं ।]

Photo by N. Pakkirisamy
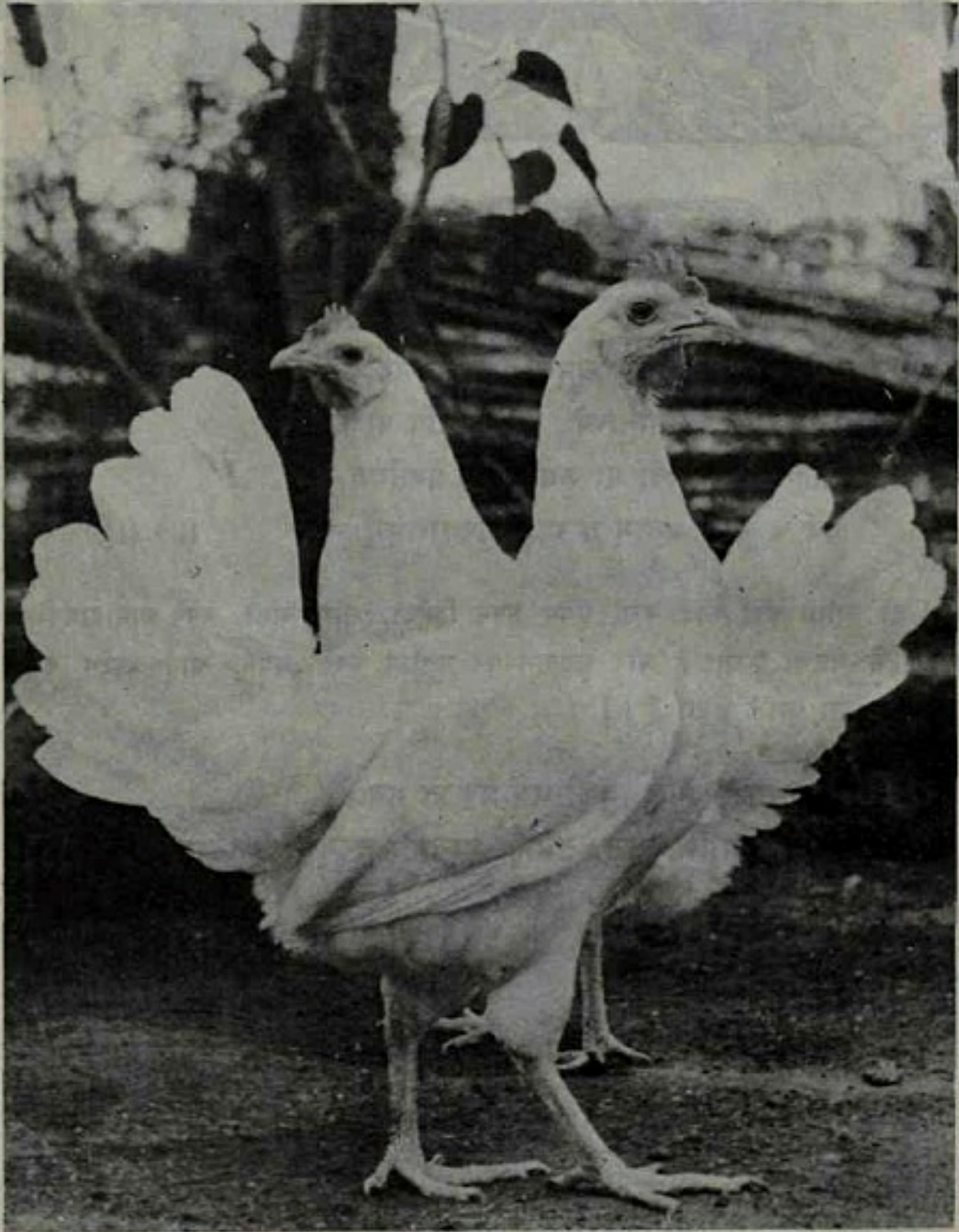
पुरस्कृत परिचयोक्ति

आपस में मुख ना मोड़ो

प्रेषक : ज्ञानेश नाम जोशी

Photo by M. Dudhediya
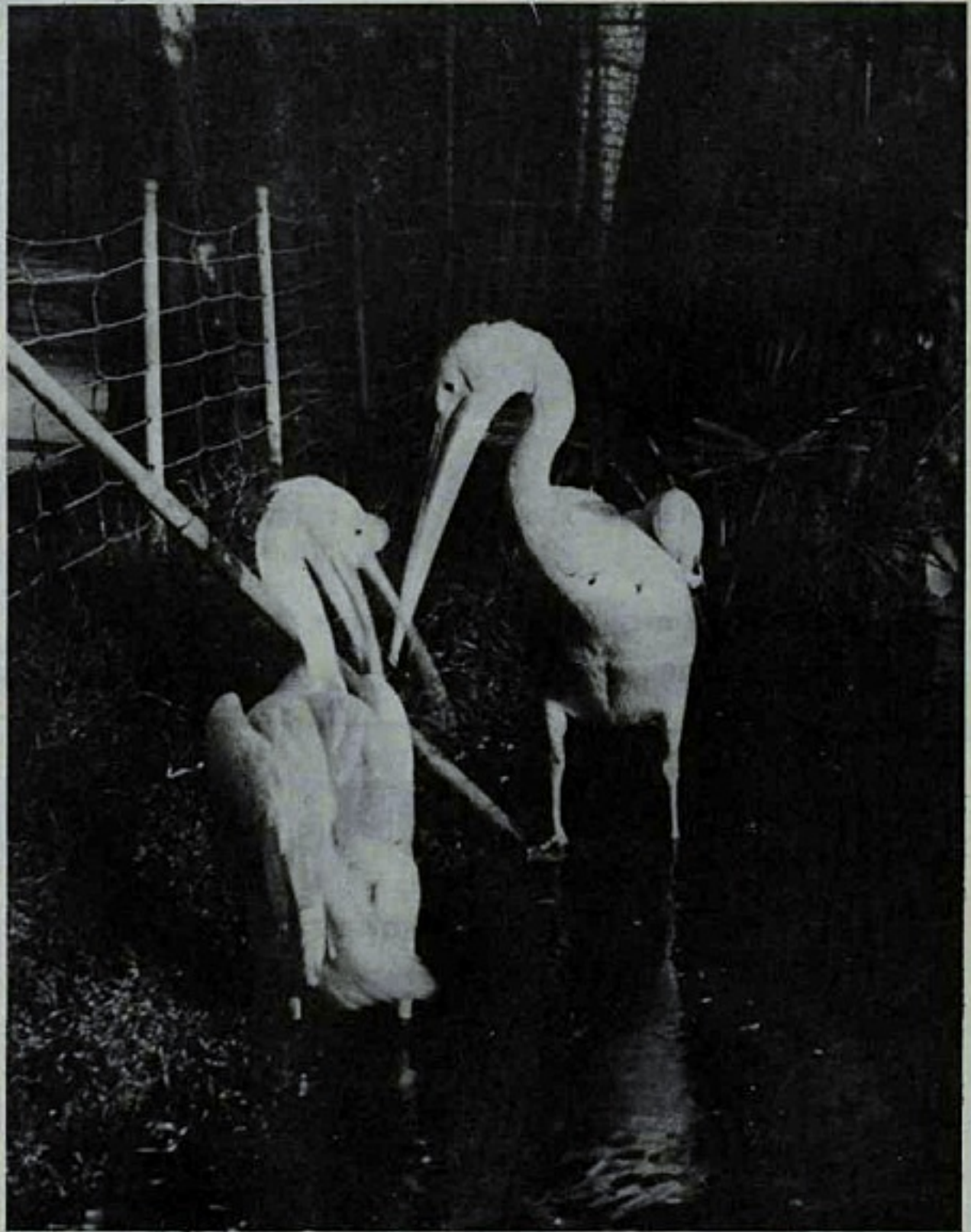
डी/१८, नेहरूनगर
बिलासपुर (म. प्र.)

एक दूजे से प्यार जोड़ो

पुरस्कृत
परिचयोक्ति

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार २०)

★

★ परिचयोक्तियाँ मई १० तक प्राप्त होनी चाहिए। सिर्फ़ कार्ड पर ही लिख भेजें।

★ परिचयोक्तियाँ दो-तीन शब्द की हों और परस्पर संबंधित हों, पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ जुलाई के अंक में प्रकाशित की जायेंगी !

चन्दामामा

इस अंक की कथा-कहानियाँ-हास्य-व्यंग्य

Printed by B. V. REDDI at Prasad Process Ltd., and Published by B. VISWANATHA REDDI for CHANDAMAMA CHILDREN'S TRUST FUND (Prop. of Chandamama Publications) 2 & 3, Arcot Road, Madras 600 026 : Controlling Editor : NAGI REDDI

चन्दामामा के ग्राहकों को सूचना

यदि आप अपना पता बदल रहे हों, तो पांचवीं तारीख से पहिले ही अपनी ग्राहक-संख्या के साथ, अपना नया पता सूचित कीजिये। यदि विलम्ब किया गया, तो अगले मास तक हम नये पते पर 'चन्दामामा' न भेज सकेंगे।

आपके सहयोग की आशा है।

डाल्टन एजन्सीस, मद्रास-६०० ०२६

सफलता के दस वर्ष

राष्ट्र की प्रगति के कदम

एक विकासशील आत्म-निर्भर अर्थव्यवस्था की ओर

खाद्यान्न की अभूतपूर्व पैदावार — 11.4 करोड़ मी. टन
औद्योगिक उत्पादन में 30 प्रतिशत वृद्धि ,
बिजली उत्पादन में 100 प्रतिशत वृद्धि ,
एक ही वर्ष में निर्यात रु० 3,300 करोड़ से अधिक ,

अनुशासित जीवन की ओर

समय की पाबन्दी और कुशलता में सुधार ,
सभी ओर भरपूर प्रयास और चमत्कारी परिणाम ,
समाज के सभी वर्गों में शान्ति और सौमनस्य,

और अधिकाधिक एकता की ओर

"लगभग हर साल कोई न कोई चुनौती और संकट सामने आया . . . .
हमें विदेशी हमले से अपने देश की रक्षा करनी पड़ी . . . .
क्षेत्रीय तनावों को प्रेमभाव और मेल जोल से कम किया गया .
हमने निजी उद्यम को समाप्त किए बिना सरकार द्वारा शुरू किए गए विकास का एक बड़ा कार्यक्रम हाथ में लिया है ।"

— इन्दिरा गांधी

मित्र-संप्राप्ति